कुरिन्थियों का पहला पत्र
1 Corinthians

यह अध्ययन, हिन्दी स्टडी बाइबल का एक भाग है।

इसकी विशेषताएं :

1. सभी पदों की संख्या को बायीं ओर रखा गया है, ताकि पढ़ते समय निरंतरता बनी रहे।
2. प्रत्येक पद का आरंभ बोल्ड (**Bold**) अक्षर से किया गया है।
3. एक पृष्ठ पर केवल उतने ही पद दिये गये हैं, जितने पदों का अध्ययन दिया गया है।
4. प्रचलित शब्दों का उपयोग करने का प्रयत्न किया गया है।
5. परमेश्वर और प्रभु यीशु के लिए आदरयुक्त भाषा प्रयुक्त की गई है।
6. आपके सुझावों का स्वागत है।

कुरिन्थियों का पहला पत्र (1 Corinthians)

१ पौलुस की ओर से, जो परमेश्वर की इच्छा से यीशु मसीह का प्रेरित होने के लिए बुलाया गया, और भाई सोस्थिनेस की
२ ओर से, परमेश्वर की उस कलीसिया के नाम जो कुरिन्थुस में है, अर्थात् उनके नाम जो मसीह यीशु में अलग किए गए,
और अलग होने के लिए बुलाए गए हैं। यह पत्र उन सब के नाम भी है जो हर जगह हमारे और अपने प्रभु यीशु मसीह
३ के नाम की प्रार्थना करते हैं। हमारे पिता परमेश्वर और प्रभु यीशु मसीह की ओर से तुम्हें अनुग्रह और शान्ति मिलती रहे।
४ मैं तुम्हारे विषय में अपने परमेश्वर का धन्यवाद सदा करता हूं, इसलिए कि परमेश्वर की यह भलाई तुम पर मसीह यीशु
५,६ में हुई, कि उनमें होकर तुम हर बात में अर्थात् सारे वचन और सारे ज्ञान में धनी किए गए, कि मसीह की गवाही तुममें
७ पक्की निकली, यहां तक कि किसी वरदान की तुम्हें घटी नहीं, और तुम हमारे प्रभु यीशु मसीह के दोबारा आने का इंतज़ार
८,९ कर रहे हो। वह तुम्हें अन्त तक स्थिर भी करेंगे कि तुम हमारे प्रभु यीशु मसीह के दिन में निर्दोष ठहरो। परमेश्वर सच्चे हैं,
१० जिन्होंने तुमको अपने बेटे हमारे प्रभु यीशु मसीह की संगति बुलाया है। हे भाइयो, बहनो, मैं तुमसे यीशु मसीह जो हमारे

अध्याय १

१:१ - रोमि १:१, गलतियों १:१। *"परमेश्वर की इच्छा"* - विश्वासी जो कुछ भी है, उसे परमेश्वर की इच्छा से होना चाहिये। उसे जानना चाहिये कि यह परमेश्वर की इच्छा है कि वह वैसा रहे। ऐसा लगता है कि पौलुस मुंह से कहता गया और सोस्थेनेस हाथ से लिखता गया। रोमि १६:२२ से तुलना करें।

१:२ - मसीह में विश्वासी क्या हैं इस विषय में पौलुस बतलाता है। वे बाहर बुलाए हुए झुण्ड (मत्ती १६:१८ में कलीसिया पर नोट्स) हैं। वे परमेश्वर के हैं (१६:१६,२०; यूहन्ना १७:६,१०)। *"मसीह यीशु में"* (इफिसियों १:१,४)। परमेश्वर ने उन्हें पवित्र होने के लिये बुलाया है (पवित्र परमेश्वर के विशेष लोग होने के लिये। लै.व्य. २०:७ पर नोट्स देखें)। उनके एक ही प्रभु हैं (८:५,६; रोमि १०:९)।

१:३ - रोमि. १:७।

१:४ - रोमि. १:८; फिलि. १:३; कुलु. १:३; १ थिस्स. १:२; २ तीमु. १:३।

१:५-७ - *"धनी किये गये"* - रोमि. १०:१२; २ कुरिं. ८:९; मत्ती ७:११। परमेश्वर ने अपनी सेवा करने के लिये उन्हें हर प्रकार की आत्मिक योग्यता दी थी - १२:४-११; २८-३१; रोमि. १२:६-८। यह पौलुस कलीसिया में मात्र अगुवों, संदेश देने वालों और शिक्षकों के विषय नहीं कह रहा है, किंतु सभी शिष्यों के बारे में कहता है। कुरिन्थियों के विश्वासियों का आत्मिक जीवन इस बात का अच्छा प्रमाण था कि उन्हें दिया गया शुभसंदेश सत्य है (पद ६)। इसके फलस्वरूप वे यीशु के द्वितीय आगमन के लिये बड़े उत्साह के साथ उनकी प्रतीक्षा करने लगे। (पद ७; मत्ती २४:३०; २ थिस्स. १:७; १ पतरस १:७,१३; ४:१३)।

"वरदान" - योग्यता जो परमेश्वर देते हैं।

"दोबारा आने" - पद ७, यहां पौलुस यूनानी शब्द प्रकाशन - अपोकॅलिप्सिस का उपयोग करता है। वह मसीह के गुप्त रीति से आने या गुप्त रीति से उठाए जाने के विषय कुछ नहीं कहता है। वह कहता है कि कुरिंथ के विश्वासी मसीह के खुले रूप में प्रगट होने की प्रतीक्षा में थे। तीतुस २:१३ से तुलना करें।

१:८ - *"अंत तक"* - फिलि. १:६; रोमि. ५:९,१०; ८:२९,३०; यूहन्ना १०:२८,२९; इब्रा. ७:२५; १ पतरस १:५।

"निर्दोष" - इफि. १:४। जिनके विरोध में कोई दोष नहीं लगाया जा सकता, वे निर्दोष हैं। तुलना करें रोमि. ८:४,८,३३,३४। मसीह का दिन वह समय है जब प्रभु यीशु दोबारा आएंगे।

१:९ - *"सच्चे"* - विश्वासियों को दी गयी सभी प्रतिज्ञाओं को परमेश्वर पूरा करेंगे और उन्हें अन्त तक संभालेंगे (पद ८; १ थिस्स. ५:२४; तीतुस १:२; २ तीमु. २:१३)।

"संगति" - १ यूहन्ना १:३; यूहन्ना १४:२३।

१:१० - देखें १२:२५; रोमि. १२:१६; इफि. ४:३। क्या सभी विश्वासियों के लिए यह संभव है कि वे "एक ही मन और एक ही

स्वामी हैं उनके नाम के द्वारा बिनती करता हूं कि तुम सब एक ही बात कहो, और तुममें फूट न हो, परन्तु एक ही मन
११ और एक ही मत होकर मिले रहो। क्योंकि हे मेरे भाइयो, बहनो, खलोए के घराने के लोगों ने मुझे तुम्हारे विषय में बताया है,
१२ कि तुममें झगड़े हो रहे हैं। मेरा कहना यह है कि, तुममें से कुछ लोग अपने आप को पौलुस का, कुछ अपुल्लोस का, कुछ
१३ कैफा का, कुछ मसीह का कहते हैं। क्या मसीह बट गये? क्या पौलुस तुम्हारे लिए क्रूस पर चढ़ाया गया? या तुम्हें पौलुस
१४ के नाम पर बपतिस्मा मिला? मैं परमेश्वर का धन्यवाद करता हूं, कि क्रिस्पुस और गयुस को छोड़, मैंने तुममें से किसी को
१५,१६ भी बपतिस्मा नहीं दिया। कहीं ऐसा न हो कि कोई कहे, कि तुम्हें मेरे नाम पर बपतिस्मा मिला। मैंने स्तिफनुस के घराने
१७ को भी बपतिस्मा दिया। इनको छोड़ मैं नही जानता कि मैंने और किसी को बपतिस्मा दिया हो। क्योंकि मसीह ने मुझे बपतिस्मा
देने के लिए नहीं, बल्कि शुभसन्देश सुनाने को भेजा है, और यह भी शब्दों के ज्ञान के अनुसार नहीं, ऐसा न हो कि मसीह

मत होकर मिले रहें?" देखें २:१६; २ कुरि. १३:११; इफि. ४:१३; फिलि. १:२७;२:२; प्रे. काम ४:३२। निस्संदेह पौलुस मसीह की शिक्षा और प्रेरितों के विषय कह रहा है। इन शिक्षाओं पर सहमत होना सभी विश्वासियों के लिए संभव किन्तु कठिन है। उसके लिए परमेश्वर के वचन का पूरा ज्ञान, उस पर विश्वास और अपने जीवन के हर पल में लागू करने का निर्णय आवश्यक है।

१:११,१२ - वह उनकी आत्मिकता और समझ की कमी की ओर इशारा करता है - ३:१-४। वे बहुत कुछ जानते थे और अच्छा बोलते भी थे (पद ५) किन्तु उस सत्य को जानने के बावजूद वे उसे जीवन में लागू नहीं किया करते थे - यह समस्या हमेशा ही सभी स्थानों में रही है। वे मनुष्य को अधिक महत्व दे रहे थे जो सभी जगह और सभी समय एक समस्या रही है (३:५-८)।

"अपुल्लोस" - प्रे. काम १८:२४-२८। विश्वासियों को *"कैफा"* - पतरस का दूसरा नाम है। दोनों ही का अर्थ चट्टान है।

"मसीह का" - जो लोग कहते थे कि केवल वे ही मसीह के शिष्य हैं वे अन्य लोगों की तुलना में अधिक आत्मिक और समझदार नहीं थे, (यदि वे इस बात को कलीसिया में विभाजन का कारण बनाते थे और दूसरों को तुच्छ समझते थे)। यह देखें कि पौलुस इस बात से प्रसन्न नहीं था कि लोगों ने उसके नाम का एक दल बनाया था और कहते थे कि वे "पौलुस के" हैं। वह यह नहीं चाहता था। वह सदा लोगों का ध्यान यीशु की ओर करता था, अपनी ओर नहीं।

१:१३ - न मसीह, न उसकी देह बांटी जा सकती है (१२:१२-१३)। विश्वासियों को यह सच्चाई जाननी चाहिए, कि उन्हें एक दूसरे को ग्रहण करना है और मसीह की एकता में बने रहना है (इफि. ४:२)। इस पद में पौलुस कह रहा है, मसीह के समान कौन व्यक्ति है? किसी व्यक्ति को आवश्यकता से अधिक ऊंचा स्थान न दें।

१:१४-१६ - मत्ती ३:६; २८:१६; मरकुस १६:१६; प्रे. काम २:३८ में बपतिस्मे पर नोट्स देखें। पौलुस जानता था, कि जहां तक उद्धार का प्रश्न है 'पश्चाताप' और 'विश्वास' विशेष बातें हैं। (प्रे. काम १७:३०;२०:२१; रोमि. १०:६,१०)। यदि उद्धार के लिए बपतिस्मा आवश्यक था (जैसा कि कुछ लोग कहते हैं), तो क्या पौलुस ऐसा कह सकता था? यह स्पष्ट है कि पौलुस के लिए एक दूसरे के साथ शान्ति के साथ रहने का प्रश्न बपतिस्मे के प्रश्नों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण था।

१:१७-२५ - पौलुस पद १७ में इन्कार नहीं कर रहा है कि मसीह ने शिष्यों को बपतिस्मा देने के लिए कहा था (मत्ती २८:१६), या यह कि सभी विश्वासियों को बपतिस्मा लेना चाहिए। वह अपनी सेवकाई के सार के विषय में कहता है, एक ही महत्वपूर्ण बात जो है 'शुभसन्देश का प्रचार करना'।

यहां पर ध्यान दें कि पौलुस अपने सन्देश में मानवीय ज्ञान और बुद्धि को दूर रखता था। वह जानता था कि ऐसा ज्ञान घमण्ड को दिखाता है (२०) और उसके द्वारा कोई भी व्यक्ति परमेश्वर के सच्चे ज्ञान तक नहीं आ सकता (२१)। वह यह भी जानता था कि लोगों को उद्धार में लाने के लिए शुभसन्देश को एक मार्ग के रूप में परमेश्वर ने नियुक्त किया था (पद २१,२३;१५:१,२; रोमि. १:१६)। संसारिक बुद्धि से सन्देश देना मसीह के क्रूस को उसकी सामर्थ से खाली करना है। हम निश्चित हो सकते हैं कि जो कोई ऐसा करता है, परमेश्वर की ओर से नहीं है और मनुष्यों के उद्धार के लिए भी लाभकारी नहीं है।

१८ का क्रूस अर्थहीन ठहरे। क्योंकि क्रूस का सत्य नाश होनेवालों के लिए मूर्खता है, परन्तु हम मुक्ति पानेवालों के लिए परमेश्वर
१९ की सामर्थ है। क्योंकि लिखा है, कि मैं ज्ञानियों के ज्ञान को नाश करूंगा, और समझदारों की समझ को तुच्छ कर दूंगा।
२० कहां रहा ज्ञानवान? कहां रहा शास्त्री? कहां इस संसार का विवादी? क्या परमेश्वर ने संसार के ज्ञान को मूर्खता नहीं ठहराया?
२१ क्योंकि जब परमेश्वर के ज्ञान के अनुसार संसार ने ज्ञान से परमेश्वर को न जाना, तो परमेष्वर को यह अच्छा लगा कि
२२ इस सन्देश की मूर्खता के द्वारा विश्वास करनेवालों को मुक्ति दे। यहूदी तो चिन्ह चाहते हैं, और यूनानी ज्ञान की खोज

पद १८ दो प्रकार के लोगों के विषय में कहता है - "नाश होने वाले" और "बचाए जाने वाले"। मसीह के क्रूस के प्रति लोगों का रवैया यह दिखाता है, कि लोग किस झुण्ड में हैं। इन पदों में "नाश होने वाले" (यूहन्ना ३:१६; लूका १९:१० देखें) दो प्रकार के हैं (पद २२) - व्यवस्था को पूरा करने वाले धार्मिक यहूदी और मूर्तिपूजक यूनानी जो अपने ज्ञान से लगाव रखते थे। दोनों ही के लिए क्रूस मूर्खता की बात थी। क्यों? क्योंकि वे उसे समझते नहीं (२ कुरि. ४:४)। वे यह नहीं मानते कि यह आवश्यक है (सुसमाचार मनुष्य की मानसिक उपज नहीं है, लेकिन परमेश्वर की योजना है - रोमि. ८:५-७)। इसके अलावा, वे इसे चाहते भी नहीं। (वे खुद पर भरोसा रखने वाले और घमण्डी हैं और क्रूस उन्हें दीन बनाता है)।

आज ऐसे बहुत से लोग हैं। वे यह नहीं सोचते कि झूठ बोलना, धोखा देना, चुराना, कुछ समय के मज़े के लिए जीना या मनुष्य की बनायी प्रतिमाओं के सामने झुकना मूर्खता है। उनके लिए मात्र क्रूस मूर्खता है (पद २४)!

कुछ लोग बचाए जा रहे हैं। (उद्धार का आरम्भ नए जन्म से होता है - यूहन्ना १:१२,१३; ३:३-८ और विश्वासियों के जी उठने और महिमा के समय तक चलता है - रोमि. ८:२३,३०।) उनके लिए क्रूस परमेश्वर की सामर्थ है। पद १८,२४; रोमि. १:१६। उन्होंने इसकी ताकत का अनुभव किया है। उसने उनके जीवन को पूरी तरह से बदल डाला है। उनके लिए यह परमेश्वर का ज्ञान है (२ कुरि. ५:१७)। क्रूस के किसी भी दायरे में वे परमेश्वर के ज्ञान को उन सभी लोगों के सभी कार्यों से अधिक देखते हैं जो मसीह यीशु पर विश्वास न करने वाले संसार के ज्ञानवान और दर्शनशास्त्री का है।

१:१९ - यशायाह २९:१४।

१:२० - सच्चा ज्ञान एक सच्चे परमेश्वर के आदर से उत्पन्न होता है। ज्ञानी दार्शनिक जो इस संसार के हैं उनके पास यह आदर नहीं है (अय्यूब २८:२८; भजन १११:१०; नीति. १:७)। इसलिए उनके पास ज्ञान रत्ती भर का नहीं, किन्तु सच यह है कि परमेश्वर ने उनके नाम मात्र के ज्ञान को क्रूस के द्वारा मूर्खता ठहराया है। मनुष्यों को बचाने के लिए क्रूस एक मार्ग है। वह ऐसा मार्ग है जिसकी कल्पना किसी भी ज्ञानी ने आज तक नहीं की। ज्ञान का मार्ग किसी को उद्धार नहीं दे सकता है। यह परमेश्वरीय मार्ग नहीं है। कुलु. २:८ भी देखें।

१:२१ - यहां पर तीन महत्वपूर्ण सच्चाईयां हैं। पहली, मनुष्य अपने दर्शन, मानसिक क्रिया और गूढ़वाद ज्ञान के द्वारा परमेश्वर को प्राप्त नहीं कर पाया। किन्तु सच्चाई इसके विपरीत थी - उन्होंने परमेश्वर के उस ज्ञान को खो दिया जो एक समय मनुष्य के पास था। (देखें रोमियों १:२१-२३)।

दूसरी बात, अपने आपको बुद्धिमान कहने वाले को जो बात मूर्खता लगती है (क्रूस का सन्देश) । परमेश्वर उसके द्वारा लोगों को बचाता है - वचन १८। "प्रचार की मूर्खता" से "जिस बात का प्रचार किया गया उसकी मूर्खता" यह मूल यूनानी भाषा का अधिक सही अर्थ लगता है। पद २३ और २५ की तुलना करें। निश्चित रीति से सुसमाचार का सन्देश मूर्खता के बिल्कुल विपरीत है, किन्तु ऐसे लगता है कि जो अपने आप को बुद्धिमान समझते हैं, उनकी दृष्टि में यह मूर्खता लगती है। पौलुस यही कहना चाह रहा है।

तीसरी सच्चाई, उद्धार उन्हीं को मिलता है जो इस शुभसन्देश पर विश्वास करते हैं। (रोमियों १:१६-१७)।

१:२२ - मरकुस ८:११; यूहन्ना ६:३०; मत्ती १२:३८,४०।

"चिन्ह", "ज्ञान" प्रत्येक बात का जो तार्किक आधार है, उसी की खोज उन्होंने की। इसलिए कि परमेश्वर ने कहा कि यह सत्य है, वे विश्वास करने के लिए तैयार नहीं थे।

२३ में हैं। परन्तु हम तो उस क्रूस पर चढ़ाए हुए मसीह का सन्देश सुनाते हैं जो यहूदियों के लिए ठोकर का कारण, और गैरयहूदियों
२४ के लिए मूर्खता हैं। परन्तु जो बुलाए हुए हैं, वे यहूदी हों या यूनानी, उनके लिए मसीह परमेश्वर की सामर्थ, और परमेश्वर
२५ का ज्ञान हैं क्योंकि परमेश्वर की मूर्खता मनुष्यों के ज्ञान से ज्ञानवान है; और परमेश्वर की निर्बलता मनुष्यों के बल से बहुत
२६ बलवान है। हे भाइयो, बहनो, अपने बुलाए जाने के विषय सोचो, कि बाहर से बहुत ज्ञानवान, बहुत सामर्थी, और बहुत धनी
२७ दिखनेवाले नहीं बुलाए गए, परन्तु परमेश्वर ने जगत के मूर्खों को चुन लिया है ताकि ज्ञानवानों को लज्जित करे; और परमेश्वर
२८ ने जगत के शक्तिहीनों को चुन लिया है कि घमण्डियों को शर्मिन्दा करे। परमेश्वर ने जगत के नीच और तुच्छ लोगों को,
२९ वरन् जो हैं भी नहीं, उनको भी चुन लिया कि उन्हें जो हैं, बेकार ठहराए, ताकि कोई भी प्राणी परमेश्वर के सामने अपनी
३० बड़ाई न करने पाए। परन्तु परमेश्वर ने तुम्हें मसीह में स्थान दिया है जिनके द्वारा परमेश्वर ने हमें, ज्ञान, पवित्रता और
३१ मुक्ति दी, तथा हमें शुद्ध भी कर दिया है; ताकि जैसा लिखा है, वैसा ही हो कि जो बड़ाई करे वह प्रभु यीशु में करे।

१:२३ - *"ठोकर का कारण"* - उनकी इच्छा और अपेक्षा के अनुसार क्रूस पर चढ़ाया गया व्यक्ति मसीह नहीं हो सकता था। *"मूर्खता"* - वे यह कह रहे थे कि मात्र अपराधी क्रूस पर चढ़ाए जाते हैं। एक क्रूसित अपराधी किसी को मुक्ति नहीं दे सकता, न उसमें वह ज्ञान दिखता था, जिसकी अपेक्षा वे कर रहे थे।

१:२४ - *"बुलाए हुए"* - रोमियों १:६; ८:३०। पद २४ के बुलाए हुए वे हैं जो पद १८ के "बचाए जा रहे" हैं।

१:२५ - मनुष्य के ज्ञान से परमेश्वर का ज्ञान कितना भिन्न और कितना ऊंचा है। तुलना करें यशायाह ५५:८,९; रोमियों ११:३३-३६।

१:२६ - यह उस समय सच था, अभी भी है। भारत में परमेश्वर बुद्धिजीवियों और अपने को ऊंची जाति के कहने वालों में बहुत ऐसे लोग नहीं जिन्होंने मुक्ति पायी हो। निर्धनों और अशिक्षितों और छोटी जाति कहलाए जाने वालों में से अधिकतर लोगों ने मुक्ति पायी है। मसीह के शब्दों को जो मत्ती ११:२५,२६ में हैं, तुलना करें। जाति के घमण्ड को वह सही नहीं ठहराता।

१:२७-२९ - यहां तुच्छ ठहराए जाने वाले और नीचा समझे जानेवालों के चुने जाने का उद्देश्य दिया गया है। परमेश्वर घमण्ड से घृणा करते हैं और जो लोग अपने बल और प्रभाव पर गर्व करते हैं, उनको देख नहीं सकते। देखें यिर्म. ९:२३; नीति. ६:१६,१७; १६:५; यशा. १:३१; २:१२-१८; १३:११; यिर्म.१७:५; मत्ती १८:३,४; याकूब ४:६। उन्होंने ऐसा प्रबंध किया है कि जिन बातों में लोग घमण्ड करते हैं, वे बेकार ठहरें और कोई मनुष्य उनकी उपस्थिति में घमण्ड न कर सके - रोमियों ३:२७; इफि. २:९।

१:३० - विश्वासी मसीह में हैं इफि. १:१,४। वे इसलिए वहां हैं क्योंकि परमेश्वर पिता ने उन्हें चुना है। उद्धार और अनन्त काल के लिए उन्हें जिसकी आवश्यकता है, वह मसीह हैं। संसार जो दे सकता है और जिसे जानता है उससे कहीं बढ़कर मसीह एक ज्ञान हैं (कुलु. २:२,३,८,९)। मसीह में सबसे अशिक्षित और छोटा समझा जाने वाला विश्वासी किसी भी बुद्धिमान व्यक्ति या दर्शनशास्त्री से अधिक ज्ञान रखता है।

"शुद्ध कर दिया" - मत्ती ५:६; रोमियों १:१७; ३:२१-२६;१०:६,१०; फिलि. ३:९ के नोट्स देखें।

"पवित्रता" - रोमियों १७:१७-१९; रोमियों १:७ पर नोट्स।

"मुक्ति" - मत्ती २०:२८; भजन. ७८:३५ के नोट्स। विश्वासी स्वयं अपने आप में इसे नहीं पा सकते, परंतु केवल मसीह में (इफि. १:१,४)।

१:३१ - यिर्म ९:२४ तुलना करें भजन ३४:२;४४:८।

यिर्म ९:२४ में प्रभु यहोवा की ओर संकेत है। यहां १ कुरिं. में यह मसीह के लिए है। यहोवा शरीर में होकर मसीह में आए। दूसरे अन्य पदों को देखें जो लूका २:११ की सच्चाई सिखाते हैं।

२ हे भाइयो, बहनो, परमेश्वर ने जिस बात की गवाही देने की मुझे आज्ञा दी, जब मैंने वह दी, तो यह सब भाषण की निपुणता
२ और संसारिक ज्ञान के बगैर था। क्योंकि मैंने यह तय किया था, कि तुम्हारे बीच क्रूस पर चढ़ाए हुए मसीह को छोड़ और किसी
३ बात का बखान न करूं। मैं अपने आप पर भरोसा न रखते हुए, शत्रुओं की उपस्थिति और अपनी बोलने की कोई योग्यता
४ न होने के एहसास के साथ आया था। मेरी भाषा, और मेरे सन्देश में ज्ञान की लुभानेवाली बातें नहीं थी, किन्तु मैं उस
५ सत्य पर निर्भर था, जिसे पवित्र आत्मा ने सिखाया और बड़े बल से दिया। ताकि तुम्हारा विश्वास मनुष्यों के ज्ञान पर
६ नहीं, परन्तु परमेश्वर की सामर्थ पर निर्भर हो। फिर भी जब हम आत्मिक समझ रखनेवालों के बीच हैं, तो बुद्धिमानी
७ की बातें करते हैं, परन्तु इस संसार की और इस संसार के नाश होनेवाले मार्गदर्शकों की बुद्धिमानी की नहीं, परन्तु हम
परमेश्वर का छिपा हुआ ज्ञान रहस्य की तरह बताते हैं, जिसे परमेश्वर ने सनातन से हमारी महिमा के लिए ठहराया, ऐसी
८ बुद्धिमानी जिसे इस संसार के मार्गदर्शकों ने नहीं जाना, क्योंकि यदि जानते, तो तेजोमय प्रभु को क्रूस पर न चढ़ाते।

अध्याय २

२:१ - *"ज्ञान"* - जिसे लोग ज्ञान कहते हैं।

२:२ - पौलुस एथेन्स से कुरिन्थुस आया जो उस समय ज्ञान और दर्शन का केन्द्र था (प्रे. काम १७:१५;१८:१)। उसने यह महसूस किया था कि सुसमाचार के केन्द्र को बनाए रखना कितना आवश्यक है। सुसमाचार का केन्द्र मसीह हैं जो लोगों के लिए क्रूस पर चढ़ाए गए। यदि कोई सिखाने वाला इस सत्य से दूर हो जाता है, तो वह कमज़ोर और बिना असर की सेवा के खतरे में है। (हालाँकि लोगों के सामने सेवा सफल दिखती हो।)

२:३ - उसे डर यह नहीं था कि लोग क्या कहेंगे। किन्तु उसे भय यह था कि कुरिन्थ के लोग शुभसन्देश के प्रति उदासीन होंगे, जैसे एथेन्स के ज्ञानी थे। यह भी कि उसमें कमी के कारण उसका सन्देश असफल ठहरे। किसी भी सन्देश देने वाले में निर्बलता और भय, अपने ज्ञान पर घमंड और लापरवाही के रवैये से बढ़कर है। तुलना करें २ कुरि. १२:६,१०।

२:४ - १:१७ देखें। यदि आवश्यकता होती तो पौलुस ज्ञान और कायल करने वाली बातें कह सकता था (प्रे. काम १७:२२-३१)। किन्तु वह जानता था कि उसकी सेवकाई में सही सन्देश और परमेश्वर के आत्मा की सामर्थ होना आवश्यक है। सही सन्देश देने वालों के लिए भी, अपने सन्देश के द्वारा लोगों को परमेश्वर के राज्य में लाना और परमेश्वर की सामर्थ के अभाव में असफल हो जाना संभव है। लूका २४:४९; प्रे. काम १:८; इफि. ५:१८. सन्देशवाहक के ज्ञान और बोलने की क्षमता से प्रभावित होकर नहीं, किन्तु मसीह पर विश्वास के द्वारा लोग उद्धार पाते हैं और विश्वास में दृढ़ होते हैं।

२:५ - सच्चा विश्वास लोगों के हृदय में परमेश्वर के आत्मा से उत्पन्न होना चाहिए। यदि वे अपना भरोसा उसके ज्ञान, बोलने की योग्यता या कायल करने वाले तर्क पर करते हैं, तो यह बनावटी होगा और ऐसा विश्वास उद्धार नहीं ला सकेगा। 'मसीह' विश्वास का ठोस आधार हैं, किन्तु इसके पक्ष में तर्क जो बुद्धि पर आधारित है, किसी के जीवन में नया जीवन नहीं लाएगा। स्वर्ग से भेजी हुई सामर्थ के साथ मसीह के सेवकों को मसीह और उनके क्रूस का सन्देश देना चाहिए।

२:६,७ - पौलुस नहीं चाहता कि उसके पाठक यह सोचें कि वह अज्ञानता की बढ़ाई कर रहा है। उसके पास परमेश्वर का गुप्त ज्ञान है जिनके विषय में संसार के बुद्धिमान और ताकतवर कुछ नहीं जानते (१:३०; कुलु. २:२,३)। ज्ञान के सम्बन्ध में भजन ५१:६; ९०:१२; १११:१०; नीति. १:७,२०; २:१-६; ३:१३; ८:१-३६; ९:१०; इफि. १:१७; याकूब १:५ देखें। सृष्टि की रचना से पहले परमेश्वर अपने लोगों को जानते थे और उन्होंने उन्हें चुना (रोमि. ८:२९,३०)। उन्होंने उन्हें नियुक्त किया कि उन्हें सर्वोत्तम ज्ञान - परमेश्वर और मसीह का ज्ञान प्राप्त हो।

२:८ - *"तेजोमय प्रभु"* - पौलुस यीशु को ऐसा नाम देता है जो केवल परमेश्वर को ही दिया जा सकता था। भजन २४:१० से तुलना करें जहां यहोवा परमेश्वर "महिमा के राजा" हैं। प्रे. काम ७:२; याकूब २:१ भी देखें। दूसरे वे संदर्भ जो दिखाते हैं कि यीशु यहोवा हैं लूका २:११ में हैं। यह सत्य कि लोगों ने एक ईश्वरीय व्यक्ति को क्रूस पर चढ़ा दिया, प्रगट करता है कि वे न तो परमेश्वर को जानते थे, न उनके ज्ञान को।

९ परन्तु जैसा लिखा है कि जो आंख ने नहीं देखी, और कान ने नहीं सुनी, और जो बातें मनुष्य के हृदय में न चढ़ी, वे ही हैं जो
१० परमेश्वर ने अपने प्रेम रखनेवालों के लिए तैयार की हैं। परन्तु परमेश्वर ने उनको अपने आत्मा के द्वारा हम पर प्रगट किया;
११ क्योंकि परमेश्वर का आत्मा सब बातें, वरन् परमेश्वर की गहराई की बातें भी जांचता है। मनुष्यों में से कौन किसी मनुष्य
की बातें जानता है, केवल मनुष्य की आत्मा जो उसमें है। वैसी ही परमेश्वर की बातें भी कोई नहीं जानता, केवल परमेश्वर
१२ का आत्मा। परन्तु हमने संसार का आत्मा नहीं, परन्तु वह आत्मा पाया है, जो परमेश्वर की ओर से है, ताकि हम उन आशीषों
१३ को जानें जो परमेश्वर ने हमें बिल्कुल मुफ्त में दी हैं। इन बातों को हम उस भाषा में नहीं जो मनुष्य की बुद्धि सिखाती है,
किन्तु उस भाषा में जो परमेश्वर का आत्मा सिखाता है - अर्थात, आत्मिक विचारों को आत्मिक शब्दों से मिलाकर सुनाते
१४ हैं। परन्तु स्वाभाविक मनुष्य परमेश्वर के आत्मा की बातें ठुकरा देता है, क्योंकि वे उसकी दृष्टि में मूर्खता की बातें हैं, और
१५ न वह उन्हें जान सकता है क्योंकि उनकी परख आत्मिक रीति से होती है। आत्मिक जन सब कुछ परखता है, परन्तु वह
१६ आप किसी से परखा नहीं जाता। क्योंकि प्रभु का मन किसने जाना है कि उन्हें सिखलाए? परन्तु हममें मसीह का मन है।

२:९ - यशायाह ६४:४ से मिलते-जुलते शब्द हैं, बिल्कुल वे ही नहीं।

२:१० - जिस ज्ञान के विषय पौलुस बात करता है वह मनुष्य की बुद्धि या दार्शनिक तर्क या गूढ़वाद से नहीं पाया जा सकता। परमेश्वर उसे अपने आत्मा से प्रगट करते हैं। उसे प्राप्त करने का कोई और तरीका ही नहीं है। यूहन्ना १६:१३-१५। परमेश्वर के आत्मा को ग्रहण करने का मात्र तरीका यीशु मसीह पर विश्वास करना है।

२:११ - यदि परमेश्वर प्रगट न करें तो परमेश्वर के विचारों को कोई नहीं जान सकता। यह पद सिखाता है कि परमेश्वर का आत्मा मात्र प्रभाव या सामर्थ ही नहीं है, वह एक व्यक्ति है जिसके पास ज्ञान है और वह प्रगट कर सकता है। (पद १०)।

२:१२ - संसार (पतित मानवजाति) के पास परमेश्वर का आत्मा नहीं है और न ही वह उसे ग्रहण कर सकता है (यूहन्ना १४:१६,१७)। मसीह में विश्वासियों ने परमेश्वर के आत्मा को ग्रहण किया (प्रे. काम २:३८; ५:३२; गल. ३:१४; इफि. १:१३) जो दूसरे लोग नहीं जान सकते (पद १४) हैं।

२:१३ - "शब्दों" पर पौलुस के ज़ोर डालने को देखें। ऐसे शब्द जो परमेश्वर के सत्य को प्रगट करते थे, वे प्रेरितों के परमेश्वर के आत्मा के द्वारा दिए गए थे, न कि मात्र वे विचार जो मन में थे। तुलना करें मत्ती ४:४; ५:१८; २ तीमु. ३:१६ से तुलना करें।

"आत्मिक विचारों को आत्मिक शब्दों से मिलाकर" - यह बात यूनानी भाषा में कई प्रकार से अनुवाद की जा सकती है। यदि शब्दों का अर्थ लें तो आत्मिक बातों की आत्मिक बातों से तुलना करना, या वर्णन करना या मिलाना ये तीनों अर्थ हैं।

२:१४ - १:१८,२३; रोमि. ८:५,८ देखें। यदि हम परमेश्वर के सत्य को ग्रहण करते और समझते हैं, तो यह आवश्यक है कि परमेश्वर का आत्मा हमें सिखाए। इसलिए इफि. १:१५-१६।

"स्वाभाविक" - बिना उद्धार पाए हुए।

२:१५ - १ यूहन्ना २:२०,२७; यूहन्ना ३:८। केवल जो लोग परमेश्वर के आत्मा के द्वारा मसीह में विश्वासी बनाए जाते हैं, वे वस्तुओं और लोगों की सही स्थिति देख सकते हैं। किन्तु जो बिना आत्मा के हैं, वे मसीह के लोगों को समझ नहीं सकेंगे। इसलिए सही मूल्यांकन नहीं कर सकेंगे। सही समझ आत्मिक समझ पर ही निर्भर होनी चाहिए और स्वाभाविक रीति से यह किसी के पास नहीं है।

"परख होती है" - यूनानी में पद १४ में यही शब्द इस्तेमाल हुआ है। यहां इसका अर्थ है व्यक्ति या वस्तु के मूल्य या सत्य को निर्धारित करना।

२:१६ - यशायाह ४०:१३। स्वाभाविक मनुष्य जो बिना परमेश्वर के आत्मा के हैं, परमेश्वर के मन को नहीं जान सकते, इसलिए विश्वासियों के मन को भी नहीं जान सकते। ऐसा इसलिए है, क्योंकि संसार की रीति पर विश्वासी नहीं सोचते। वे मसीह

३ हे भाइयो और बहनो, मैं तुमसे इस रीति से बातें न कर सका, जैसे आत्मिक लोगों से, परन्तु जैसे शारीरिक लोगों से, और
२,३ उनसे जो मसीह में बालक हैं। मैंने तुम्हें दूध पिलाया, अन्न न खिलाया; क्योंकि तुम उसको खा नहीं सकते थे। तुम अब तक
शारीरिक हो, क्योंकि जब तुम में डाह और झगड़ा है, तो क्या तुम शारीरिक नहीं? क्या तुम आम लोगों की तरह जीवन
४ नहीं जी रहे हैं? इसलिए कि जब एक कहता है, मैं पौलुस का हूं, और दूसरा कि मैं अपुल्लोस का हूं, तो क्या तुम मनुष्य
५ नहीं? अपुल्लोस क्या है? पौलुस क्या है? जैसा हर एक को प्रभु ने दिया उसके अनुसार वे केवल सेवक हैं, जिनके द्वारा
६,७ तुमने विश्वास किया। मैंने लगाया, अपुल्लोस ने सींचा, परन्तु परमेश्वर ने बढ़ाया। इसलिए न तो लगानेवाला कुछ है, और

में परमेश्वर के विचार रखते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि जो कुछ मसीह जानते हैं, विश्वासी जानते हैं। इसका अर्थ यह है क्योंकि मसीह उनमें हैं, और उनमें मसीह का आत्मा है, वे परमेश्वर के सत्य की शुरूवात के स्थान पर हैं। और वह उन्हें समझने के लिए योग्य बना सकता है।

क्या यह मात्र प्रेरितों और अगुवों के बारे में सत्य है? नहीं। यह सभी आत्मिक विश्वासियों के सम्बन्ध में है (१:२६-२८)। शिक्षा, ऊंची मानसिक योग्यता और मानवीय बुद्धि से इसका कोई लेना-देना नहीं है। महत्वपूर्ण यह है कि परमेश्वर का आत्मा मनुष्य के आत्मा को समझ दे। यह ध्यान दें कि इस वचन में परमेश्वर का आत्मा और मनुष्य के आत्मा में अंतर दिखाया गया है। सभी जगह यह परमेश्वर के वचन की शिक्षा है। यूहन्ना १४:१७; रोमि. ८:६,१६; गल. ३:२; इफि. ४:१८; यहूदा १६ देखें।

अध्याय ३

३:१,२ - *"आत्मिक लोगों"* - जिनके पास परमेश्वर का आत्मा नहीं है, उनकी तुलना में सभी विश्वासी आत्मिक हैं। (२:१४-१६; रोमि. ८:५,६)। किन्तु विश्वासियों में कुछ दूसरों से अधिक आत्मिक हैं। दुख तो यह है कि कुछ उन संसार के लोगों के समान व्यवहार करते हैं जो अपने पापी स्वभाव के अनुसार जीते हैं। कुरिन्थ के विश्वासी इसी तरह के लोग थे। आत्मिक रीति से वे अभी भी शिशु थे और पौलुस उन्हें परमेश्वर की गहरी बातें न सिखा सका। (२:६; इब्रा. ५:११-१४ से तुलना करें)।

"शारीरिक" - वे मसीही जो प्रायः अपने पुराने पापी स्वभाव का शिकार बन जाते हैं। २:१४ और ३:१ में पौलुस तीन प्रकार के लोगों के विषय बात करता है।

"स्वाभाविक" - जिनके पास परमेश्वर का आत्मा नहीं है उन्होंने यीशु को नहीं अपनाया है।

"आत्मिक" - जिनके पास परमेश्वर का आत्मा है और जो उसके अनुसार जीते हैं। 'शारीरिक' वे हैं जिनके पास परमेश्वर का आत्मा है किन्तु उनका जीवन ऐसा है, मानो उनके पास परमेश्वर का आत्मा नहीं है।

३:३ - उनके शारीरिक होने का प्रमाण यहां है। विश्वासियों में जलन और झगड़ा परमेश्वर के आत्मा की ओर से नहीं आते, परंतु मनुष्यों में पाए जाने वाले पुराने स्वभाव से आते हैं। (गल. ५:१६,२०; याकूब ३:१४-१८)। मसीह में विश्वासियों को यह अधिकार नहीं, कि वे अविश्वासियों के समान जीएं। वे परमेश्वर के लोग हैं जिनके पास परमेश्वर का आत्मा है और उन्हें ऊंचे स्तर के जीवन के लिए बुलाया गया है।

३:४ - १:११,१२ देखें। विश्वासी आज भी पार्टी बाजी, मण्डली पर घमण्ड या लोगों को महिमा देने के द्वारा अपनी शारीरिकता दिखाते हैं।

३:५ -६ - विश्वासियों को यह देखना चाहिए कि केवल प्रभु यीशु ही महत्वपूर्ण हैं, जो सन्देश देते या सिखाते हैं, कुछ नहीं हैं (पद ७)। प्रभु यीशु लोगों को कार्य सौंपते हैं (पद ५)। परमेश्वर कार्य को बढ़ाते हैं, मनुष्य नहीं (पद ७)। परमेश्वर ही सच्चाई, आत्मिक जीवन और आशीष का स्त्रोत हैं। पौलुस और अपुल्लोस जैसे सच्चे सेवकों के पास एक उद्देश्य है (पद ८)। विश्वासियों को यह जानकर एक मन और एक हृदय से उन्हें ग्रहण करना है (१:१०), किन्तु उन्हें आवश्यकता से अधिक नहीं समझना है।

८ न सींचनेवाला, परन्तु उसे बढ़ानेवाले परमेश्वर। लगानेवाला और सींचनेवाला दोनों एक हैं; परन्तु हर एक व्यक्ति अपने
९ ही परिश्रम के अनुसार अपनी ही मज़दूरी पाएगा। क्योंकि हम परमेश्वर के सहकर्मी हैं; तुम परमेश्वर की खेती और परमेश्वर
१० की रचना हो। परमेश्वर के उस अनुग्रह के अनुसार, जो मुझे दिया गया, मैंने बुद्धिमान राजमिस्त्री के समान नींव डाली,
११ और दूसरा उस पर रद्दा रखता है। परन्तु हर एक मनुष्य सावधान रहे कि वह उस पर कैसा रद्दा रखता है। क्योंकि उस
१२ नींव को छोड़ जो पड़ी है, कोई दूसरी नींव नहीं डाल सकता, और वह नींव यीशु मसीह हैं। यदि कोई इस नींव पर सोना
१३ या चान्दी या बहुमोल पत्थर या लकड़ी या घास या फूस का रद्दा रखे, तो हर एक का काम प्रगट हो जाएगा, क्योंकि वह
१४ दिन उसे बताएगा, क्योंकि वह दिन आग के साथ प्रगट होगा। वह आग हर एक का काम परखेगी कि कैसा है। जिसका
१५ काम उस पर बना हुआ स्थिर रहेगा, वही मज़दूरी पाएगा। यदि किसी का काम जल जाएगा, तो उसे हानि उठानी पड़ेगी;

३:७ - *"कुछ"* - स्वयं के बारे में ऐसा रवैया परमेश्वर के प्रत्येक सेवक का होना चाहिए। १५:९; २ कुरि. ३:५; इफि. ३:८; १ तीमु. १:१५। निर्ग ३:११; यहूदा ९:१५; यिर्म. १:६ भी देखें। पौलुस की सफलता का यह एक रहस्य था। उसका ध्यान इस बात पर नहीं था कि लोग उसकी बड़ाई करते हैं या बुराई। दीनता की आत्मा में सेवा करना उसका उद्देश्य था।

३:८ - पद १४

३:९ - *"परमेश्वर के सहकर्मी"* - परमेश्वर के सेवक मसीह के साथ जुड़े हुए हैं। उनमें परमेश्वर का पवित्र आत्मा है। वे परमेश्वर के कार्य को कर रहे हैं। क्या इससे बढ़कर महान और ऊंचे स्तर का कोई और कार्य हो सकता है?

"परमेश्वर की खेती" - मत्ती १३:२४।

"परमेश्वर की रचना" -पद १६; इफि. २:१९-२२; १ पतरस २:५।

३:१० - पद ७ में पौलुस कहता है कि वह कुछ भी नहीं। यहां वह बताता है कि उसने जो कुछ किया है वह परमेश्वर की सहायता से है। परमेश्वर ने उसे निःशुल्क योग्यताएं एवं अवसर दिए हैं। २ कुरि. ३:५,६भी देखें।

"नींव डाली" - कुरिंथ में पौलुस ने कार्य आरंभ किया (प्रे. काम १८:१)। उस नींव पर दूसरे लोग इमारत बना रहे थे।

३:११ - यशा. २८:१६; प्रे.काम ४:११; इफि. २:२०; १ पतरस २:६। यीशु के बारे में सच्चाई का सन्देश और शिक्षा देने के द्वारा पौलुस ने कुरिंथ में नींव डाली थी। उसके भीतर कार्य करने वाले परमेश्वर के आत्मा की सामर्थ के द्वारा वह दूसरों को मसीह में विश्वास तक ला रहा था। पौलुस तो कुरिन्थुस से चला गया, लेकिन दूसरे लोगों ने वह कार्य जारी रखा।

३:१२ - यदि इमारत बनाने वाले आत्मिक हैं और परमेश्वर के बहुमूल्य वचन को सिखाते और अमल करते हैं, तो यह ऐसा है जैसे कि कीमती धातु और मोती का इस्तेमाल हो रहा है। किन्तु यदि बनाने वाले संसारिक हैं और अविश्वासियों के समान व्यवहार करते हैं (पद ३) और अपनी बुद्धि से बनाते हैं, तो यह लकड़ी और भूसा उपयोग करने के समान है। विश्वासियों में जो कुछ उनका स्वयं का, शरीर का है, वह सब न्याय के दिन किसी कीमत का नहीं होगा, चाहे वह कलीसिया से संबंधित कार्य हो और मसीह के नाम में किया गया हो। (क्या आज ऐसा नहीं हो रहा है?) परंतु वह सभी जो परमेश्वर के आत्मा की ओर से है, सदा ठहरेगा।

३:१३-१५ - *"दिन"* - पौलुस उस दिन के विषय वह कह रहा है, जब परमेश्वर अपने सेवकों के कार्य का न्याय करेंगे। पद १३ कहता है कि वह प्रगट करनेवाला न्याय, अग्नि का न्याय और परखे जाने का न्याय होगा। उस दिन व्यक्ति ने कितना कार्य किया यह महत्वपूर्ण नहीं होगा, किंतु वह कार्य किस प्रकार का है यह महत्वपूर्ण होगा। परमेश्वर की आग के द्वारा परखे जाने से पहले कार्य कैसा है यह विशेष नहीं है, लेकिन आग से परखे जाने के बाद क्या रह जाता है। अपने कार्य के सम्बंध किस तरह से डरते और कांपते हुए और सावधानी के साथ परमेश्वर के सेवकों को अपना काम करते रहना चाहिये। (२:२)।

३:१४ - मत्ती १६:२७; २ कुरिं. ५:१०; प्र. वाक्य २२:१२।

३:१५ - *"हानि उठानी पड़ेगी"* - उन पुरूस्कारों की हानि जो उसे मिल सकते थे। २:८ यूहन्ना से तुलना करें।

"आग" - १ पतरस ४:१७,१८ से तुलना करें।

१६ लेकिन वह स्वयं जलते जलते बच जाएगा। क्या तुम नहीं जानते कि तुम परमेश्वर का भवन हो, और परमेश्वर का आत्मा
१७ तुममें वास करता है? यदि कोई परमेश्वर के भवन को नाश करेगा तो परमेश्वर उसे नाश करेंगे; क्योंकि परमेश्वर का भवन
१८ पवित्र है, और वह भवन तुम हो। कोई अपने आपको धोखा न दे। यदि तुममें से कोई इस संसार में अपने आप को ज्ञानी
१९ समझे, तो मूर्ख बने, ताकि ज्ञानी हो जाए। क्योंकि इस संसार का ज्ञान परमेश्वर की दृष्टि में मूर्खता है, जैसा लिखा है
२०,२१ कि वह ज्ञानियों को उनकी चालाकी में फंसा देते हैं। प्रभु ज्ञानियों की चिन्ताओं को जानते हैं कि वे व्यर्थ हैं। इसलिए मनुष्यों
२२ पर कोई घमण्ड न करे, क्योंकि सब कुछ तुम्हारा है। क्या पौलुस, क्या अपुल्लोस, क्या कैफा, क्या जगत, क्या जीवन,
२३ क्या मरण, क्या वर्तमान, क्या भविष्य, सब कुछ तुम्हारा है, और तुम मसीह के हो, और मसीह परमेश्वर के हैं।

३:१६ - व्यक्तिगत् और सामूहिक रीति से विश्वासी परमेश्वर का भवन है। भवन वह स्थान है, जहाँ उपासना होती है और परमेश्वर को बलिदान चढ़ाए जाते हैं (रोमियो १२:१,२; इब्रा. १३:१५,१६; १ पतरस २:५)। वहाँ परमेश्वर की उपस्थिति होती है (भजन ११:४; यूह.१७:२३; प्रे. काम २:४; रोमि. ८:९)। मसीह के विश्वासी ही वह भवन हैं जो परमेश्वर के लिये इस पृथ्वी पर हैं। जो लोग मसीह या उनकी देह की कीमत नहीं समझते वे मनुष्य के बनाए हुए भवनों मे जा सकते हैं, किंतु वहाँ परमेश्वर नहीं हैं (प्रे. काम १७:२४)।

३:१७ - *"नाश...नाश"* - यहाँ एक ही यूनानी शब्द दो बार उपयोग किया गया है। इसके अन्य अर्थ भी हैं जैसे, भ्रष्ट करना, चोट पहुंचाना, नाश करना आदि। पौलुस मूर्ख शिक्षकों की ओर इशारा कर रहा होगा, जो कुरिंथ एवं दूसरी कलीसियाओं को परेशान कर रहे थे (रोमि. १६:१७,१८)। विश्वासी परमेश्वर के भवन को नष्ट नहीं करते - वे परमेश्वर का भवन हैं और दूसरे उनको नष्ट करने का प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसा लगता है कि वे झूठे उपदेशक संसारिक ज्ञान का प्रसार कर रहे थे और मसीह के क्रूस को अलग रखकर सुसमाचार को बिगाड़ रहे थे। २ कुरिं. ११:४; १३:१५,१८ देखें। इसी प्रकार की शिक्षा परमेश्वर के भवन को बर्बाद करती है। हम निश्चित हो सकते हैं कि जो लोग उसके पवित्र कार्य को नष्ट करना मांगते हैं, परमेश्वर उनके साथ कठोरता से व्यवहार करेगा।

३:१८ - *"कोई अपने आपको धोखा न दे"* ६:९; १५:३३।

"ज्ञानी" - परमेश्वर की दृष्टि में संसारिक ज्ञान के पीछे जाने से मनुष्य बुद्धिमान नहीं हो जाता, किंतु उसे त्यागने और मसीह के सुसमाचार को ग्रहण करने के द्वारा संसार की दृष्टि में ऐसे लोग मूर्ख समझे जाते हैं (१:१८)।

३:१९ - १:२२; अय्यूब ५:१३ देखें।

३:२० - भजन ९४:११। इसलिये कि हमारा ज्ञान व्यर्थ और मूर्खता है हमें इसे त्यागना चाहिये।

३:२१ - पद ४, १:१२,२९,३१। परमेश्वर के हाथों में मनुष्य हथियार हैं। जिस परमेश्वर ने हथियार बनाया और उसे उपयोग में लाते हैं, सारी प्रशंसा उन्हीं को मिले, माध्यम को नहीं।

३:२२ - विश्वासियों के लाभ के लिये परमेश्वर ने अपने सेवकों को नियुक्त किया है (पद ५; इफि. ४:११-१३)। संपूर्ण पृथ्वी वह भूमि है जहां विश्वासियों को बोया गया है, सींचा जाता है और वे बढ़ते हैं। इस जीवन में होनेवाली सभी बातें (घटनाएं) उनके लिये भलाई उत्पन्न करती है (रोमि. ८:२८)। मृत्यु भी उन्हीं की है - यह एक वरदान है जो उन्हें नाशमान शरीर और समस्त प्रकार के पापों और समस्याओं से मुक्त करती है। मसीह में विश्वासी के लिये मृत्यु एक द्वार है जो परमेश्वर और मसीह के संगी वारिस हैं (रोमि. ८:१७; मत्ती ५:५; इफि. १:१४; प्रका. २१:७)। फिर मनुष्यों में यह घमण्ड क्यों? एक दूसरे पर गर्व क्यों करना?

३:२३ - विश्वासी मनुष्यों के नहीं है, किंतु मसीह के हैं (यूह. ६:३७,३९; १७:६)। उन्हें केवल यीशु को ही सारा श्रेय देना चाहिये (१:३१)।

"मसीह परमेश्वर के हैं" - ११:३; १५:२८; मत्ती ३:१७; यूहन्ना ३:१६; १४:२८।

४ मनुष्य हमें मसीह के सेवक और परमेश्वर के भेदों के प्रबंधक समझें। यहां प्रबंधक में यह बात देखी जाती है कि वह ईमानदार
३ निकले। परन्तु मेरी दृष्टि में यह बहुत सामान्य बात है, कि तुम या मनुष्यों का कोई न्यायी मुझे परखे, बल्कि मैं स्वयं ही
४ अपने आपको नहीं परखता। क्योंकि मेरा मन मुझे किसी बात में दोषी नहीं ठहराता, परन्तु इससे मैं निर्दोष नहीं ठहरता,
५ क्योंकि मेरे परखनेवाले प्रभु हैं। इसलिए जब तक प्रभु न आए, समय से पहले किसी बात में अंतिम राय न दो। वही तो
अन्धकार की छिपी बातें ज्योति में दिखाएंगे, और मन की भावनाओं को प्रगट करेंगे, तब परमेश्वर की ओर से हर एक
६ की प्रशंसा होगी। हे भाइयो, बहनो, मैंने इन बातों में तुम्हारे लिए अपनी और अपुल्लोस की चर्चा उदाहरण की रीति पर की
है, इसलिए कि तुम हमारे द्वारा यह सीखो कि लिखे हुए से आगे न बढ़ना, और एक के पक्ष में और दूसरे के विरोध में गर्व
७ न करना। क्योंकि तुम में और दूसरे में कौन भेद करता है? और तुम्हारे पास क्या है जो तुम ने (दूसरे से) नहीं पाया; और
८ जबकि तुम ने (दूसरे से) पाया है, तो ऐसा घमण्ड क्यों करते हो कि मानो नहीं पाया? तुम तो तृप्त हो चुके; तुम धनी हो

अध्याय ४

४:१ - देखें २:७; ३:५,१०; रोमि. १६:२५; गल. १:११,१२; इफि. ३:२३। पौलुस और दूसरे प्रेरितों ने अपनी शिक्षा का निर्माण नहीं किया था। परमेश्वर ने उन पर प्रगट किया था और उनकी देखरेख में सब कुछ दिया था। पौलुस चाहता था कि इस सत्य की आवश्यकता के बारे में प्रत्येक जन समझे।

४:२ - सभी मसीह के सेवकों के लिए विश्वासयोग्यता एक आवश्यक गुण है। मत्ती २४:२५; २५:२१,२३; लूका १६:१०; १६:१७।

४:३,४ - पौलुस को इस बात की कोई फिक्र नहीं थी कि कुरिंथ के लोग उसकी विश्वासयोग्यता के विषय में क्या कहते हैं। वह मसीह का सेवक था, उनका नहीं। मसीह ने उसे भेजा था और बताया था कि वह क्या सिखाए, उन्होंने नहीं। वह मसीह के प्रति ज़िम्मेदार था, न कि उनके प्रति, रोमि. १४:१०-१२ से तुलना करें। वह स्वयं को नहीं जांच रहा था; क्योंकि यह उसका कार्य नहीं था। वह यह जानता था कि कोई भी अपने आप को सही रीति से जांच नहीं सकता। दूसरे उसे जांचें तो जांचें। मात्र परमेश्वर ऐसा कर सकते हैं क्योंकि वही जानते हैं कि किसी व्यक्ति को उन्होंने क्या दिया है और उस व्यक्ति के उद्देश्य, संघर्ष, प्रलोभन, कठिनाईयां, भीतरी असफलताएं और सफलताएं क्या हैं।

पौलुस का विवेक शुद्ध था - प्रे.काम २३:१; २४:१६ देखें। दूसरे लोग हमारे विषय में किस प्रकार मूल्यांकन करते हैं, इस सम्बंध में चिंता का अभाव हमें इस बात की स्वतंत्रता देता है, कि हम परमेश्वर की इच्छा के अनुसार उनकी सेवा करें।

४:५ - इसका अर्थ है कि दूसरों की मनोवृत्ति और विश्वासयोग्यता को न मापें। बाद में वह कहता है कि लोगों के बाहरी व्यवहार को परखें (५:१२; ६:१-६)। मसीह हृदय की छुपी बातों को समझ सकते हैं और उनका न्याय करेंगे। किसी दूसरे व्यक्ति को यह काम नहीं करना चाहिये।

"परमेश्वर की ओर से प्रशंसा" - मत्ती २५:२१,२३; रोमि. २:२६; २ कुरिं. १०:१८; गल. १:१२।

४:६ - कुरिंथ के लोगों के साथ समस्या यह थी कि वे परमेश्वर के सेवकों को बाइबिल के दृष्टिकोण से नहीं देख रहे थे (जो लिखा है)। पौलुस ने अपना और अपुल्लोस का उदाहरण यह दिखाने के लिये दिया। जैसा वे चाहते थे, वे लोगों को परख रहे थे। वे कुछ लोगों की प्रशंसा कर रहे थे और कुछ को नीचा देख रहे थे। उन्हें यह सीखना था कि वे ऐसा न करें।

४:७ - कुछ लोग अपनी योग्यताओं या पद या इस सच्चाई पर घमण्ड कर रहे थे कि वे इस शिक्षक के नहीं किंतु दूसरे शिक्षक के अनुयायी थे। वे अपने आपको दूसरे विश्वासियों से ऊँचा समझने के पाप में गिर पड़े थे। यह उस विचारधारा के बिलकुल विपरीत थी जो उनमें थी। फिलि. २:३ देखें। लूका १८:९ से तुलना करें। पौलुस उन्हें याद दिलाता है कि जो कुछ उनके पास था, वह परमेश्वर की ओर से मिलने वाला योग्य वरदान था, इसलिये यदि उन्हें घमण्ड करना है, तो देनेवाले में करें, न कि स्वयं में (१५:१०)।

४:८-१३ - इन पदों में पौलुस व्यंगपूर्ण भाषा का प्रयोग करते हुए उनके घमण्ड पर चोट करता है। ऐसा वह उन्हीं के आत्मिक

९ चुके, तुमने हमारे बिना राज्य किया; परन्तु भला होता कि तुम राज्य करते ताकि हम भी तुम्हारे साथ राज्य करते। मेरी समझ
में परमेश्वर ने हम प्रेरितों को सब के बाद उन लोगों के समान ठहराया है, जिनकी मृत्यु की आज्ञा हो चुकी हो; क्योंकि हम
१० जगत और स्वर्गदूतों और मनुष्यों के लिए एक तमाशा ठहरे हैं। हम मसीह के लिए मूर्ख हैं; परन्तु तुम मसीह में बुद्धिमान
११ हो; हम निर्बल हैं, परन्तु तुम बलवान हो; तुम आदर पाते हो, परन्तु हम अपमानित होते हैं। हम इस क्षण तक भूखे-प्यासे
१२ और नंगे हैं, और घूसे खाते हैं और मारे मारे फिरते हैं। हम अपने ही हाथों से परिश्रम करते हैं। लोग भला बुरा कहते
१३ हैं, हम आशीष देते हैं; वे सताते हैं, हम सहते हैं। वे बदनाम करते हैं, हम बिनती करते हैं। हम आज तक जगत के कूड़े
१४ और सब वस्तुओं की खुरचन के समान ठहरे हैं। मैं तुम्हें शर्मिन्दा करने के लिए ये बातें नहीं लिखता, परन्तु अपने प्रिय
१५ बेटे, बेटी जानकर उन्हें चितौनी दे रहा हूं। क्योंकि यदि मसीह में तुम्हारे सिखानेवाले दस हज़ार भी होते, तौभी तुम्हारे
१६ पिता बहुत से नहीं, इसलिए कि मसीह यीशु में सुसमाचार सुनाने से मैं तुम्हारा पिता हुआ। इसलिए मैं तुमसे बिनती करता
१७ हूं कि मेरी तरह जियो। इसलिए मैंने तीमुथियुस को जो प्रभु में मेरा प्रिय और विश्वासयोग्य पुत्र है, उसे तुम्हारे पास भेजा
है। एक मसीही शिक्षक के रूप में वह मेरा चरित्र तुम्हें याद दिलाएगा, जिस तरीके का इस्तेमाल मैं हर एक कलीसिया में

लाभ के लिए करता है।

४:८ - ऐसा लगता है कि पौलुस कह रहा है, "तुम सोचते हो कि मसीही जीवन में तुम काफी ऊँचाई पर पहुंच गये हो, सिद्ध हो गये हो और मसीह के साथ महिमा में शासन कर रहे हो।"

४:९ - जिस सताव को प्रेरितों ने सहा, उसकी ओर पौलुस संकेत कर रहा है (प्रे. काम ५:१७,१८,४०; १२:१-२; १४:१९, १६:२२-२४; २ कुरिं. ११:२३-२७)। उन दिनों में अपराधियों को जान से मारने से पहले उन्हें सड़कों पर घुमाया जाता था। पौलुस कहता है कि संसार में उसकी स्थिति इस प्रकार की है। किंतु वह यह नहीं मानता कि ऐसा संयोगवश हो गया था या यह उसकी तकदीर में है। वह जानता है कि परमेश्वर ने यह भले और सही उद्देश्य से किया है।

४:१० - *"मसीह के लिये मूर्ख"* - इसका अर्थ है कि वे इस संसार के ज्ञान को रद्द करके उन बातों का सन्देश देने के लिए तैयार थे जिसे संसार मूर्खता कहता है (१:१८,२३)। कुरिंथ के मसीही सच में बुद्धिमान नहीं थे वे ऐसा सोचते अवश्य थे।

"निर्बल" - २:३; २ कुरिं. १२:९,१०।

४:११ - २ कुरिं. ११:२७। इसे तरीके से संसार सर्वोत्तम और आत्मिक लोगों के साथ व्यवहार करता है। इब्रा. ११:३६-३८; यूह. १५:१८-२१; १६:३३ से तुलना करें।

४:१२,१३ - *"अपने ही हाथों से परिश्रम करके"* - प्रे. काम १२:३; २०:३४,३५।

"आशीष" - मत्ती ५:४४; लूका ६:२७-२८; रोमि. ७:१४; १पतरस २:२१-२३।

"कूड़े और सब वस्तुओं की खुरचन" - मसीह के प्रेरितों के साथ संसार ने ऐसा व्यवहार किया जैसे कि वे सबसे नीच और सबसे बुरे हैं।

४:१४ - पौलुस यह सब इसलिये नहीं लिख रहा था कि लोग उस पर तरस खाएं या उन्हें लज्जित करें। उसने उनकी दयनीय आत्मिक दशा को देखा और प्रेम में (प्रिय बालक) उन्हें चितौनी दी।

४:१५ - परमेश्वर के राज्य में उन्होंने आत्मिक जन्म का अनुभव किया था (यूह. १:१२,१३; ३:३-८) और वह सब पौलुस की सेवा के द्वारा हुआ था। गलतियों ४:१९ से तुलना करें।

४:१६ - फिलि. ३:१७; १ थिस्सल. १:६। पौलुस लोगों को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर रहा था (३:१-७) किंतु उसे मालूम था कि परमेश्वर ने उसे इस बात का नमूना बनाया कि लोगों को कैसे जीना चाहिये, और उस सुसमाचार को प्रगट किया था, जिसे वह प्रचार करता था। वह मसीह का अनुकरण करने वाला था। इसलिये उसकी नकल करना लोगों के लिए ठीक था - ११:१। वह उन लोगों के समान नहीं था जो कहते कुछ हैं और करते कुछ (मत्ती २३:३; रोमि. २:२१-२४। झूठे शिक्षकों के पीछे चलना सुरक्षित नहीं था जो उन्हें परेशान करने आ गए थे।

१८,१९ करता हूं। कितने तो ऐसे घमंड से भर गए हैं, मानो मैं तुम्हारे पास आने ही का नहीं। परन्तु यदि प्रभु चाहेंगे, तो तुम्हारे
२० पास शीघ्र ही आऊंगा, और उन घमण्डियों की बातों को नहीं, परन्तु उनकी सामर्थ को जान लूंगा। क्योंकि परमेश्वर का
शासन मात्र बड़ी बड़ी बातों का बखान करने में नहीं, लेकिन दिए गए आत्मा के द्वारा, पवित्र आत्मा के द्वारा होने वाले कार्यों
२१ में है। तुम क्या चाहते हो? क्या मैं छड़ी लेकर तुम्हारे पास आऊं या प्रेम और नम्रता की आत्मा के साथ?

५ यहां तक सुनने में आता है कि तुममें व्यभिचार होता है, वरन् ऐसा व्यभिचार जो दूसरे समाजं में भी नहीं होता। शर्म की
२ बात है कि एक मनुष्य अपने पिता की पत्नी को रखता है। तुम्हें इस बात का दुख नहीं कि ऐसा काम करनेवाला तुम्हारे
३ बीच में से निकाला जाए, परन्तु घमण्ड करते हो। मैं तो शरीर के भाव से दूर था, परन्तु आत्मा के भाव से तुम्हारे साथ
४ होकर, मानो स्वयं उपस्थित होकर ऐसा काम करनेवाले के विषय में यह आज्ञा दे चुका हूं, कि जब तुम मेरे प्रेरिताई

४:१७ - पौलुस तीमुथियुस का शारीरिक पिता नहीं था, लेकिन आत्मिक पिता था। प्रे. काम १६:१; १ तीमु. १:२। वह कुरिंथियों से यह कह सकता था कि उसका जीवन और उसकी शिक्षा मेल खाते थे।

४:१८ - ये उन लोगों के झुण्ड में से थे जो पौलुस का विरोध किया करते थे। उनके संसारिक ज्ञान और पापमय घमण्ड के कारण वे अपने आपको दूसरों से अच्छा समझते थे। वे यह सोचते थे कि वह वापस कुरिन्थ नहीं आएगा।

४:१९ - *"यदि प्रभु चाहेंगे"* - पौलुस के जीवन में यह विचार सदा से था, याकूब ४:१३,१४ से तुलना करें।

४:२० - कुरिंथ में पौलुस के विरोधी अच्छा संदेश दे सकते थे, किंतु क्या उसी के अनुसार अच्छा जीवन जीते थे? मसीह का सच्चा शुभसन्देश उद्धार के लिये परमेश्वर की शक्ति है (रोमि. १:१६)। यह लोगों को नया बना देता है (२ कुरिं. ५:१७)। यदि एक व्यक्ति परिवर्तित नहीं हुआ तो उसके पास दीन, आज्ञाकारी और शुद्ध जीवन बिताने की ताकत नहीं है। उसकी बातचीत और शिक्षा दोनों ही व्यर्थ है। तुलना करें रोमि. १४:१७। यह परमेश्वर की वह ताकत है जो अद्भुत कामों को करने और जागृति लाने में, वचन सुनाए जाने पर कार्य करती है।

४:२१ - *"छड़ी"* - वह मसीह का प्रेरित और उनका आत्मिक पिता था (पद १५)। आवश्यकता के अनुसार अनुशासित करने, डांटने और दण्ड देने का उसे अधिकार था। देखें २ कुरिं. १३:१०। हालांकि बिना कठोर अनुशासन के वह उनके साथ प्रेम की संगति करना चाहता था यह चुनाव उन्हीं के हाथों में था (२ कुरिं. १:२३,२४देखें)।

अध्याय ५

५:१ - जिस प्रकार से पौलुस कहता है - "माँ" कहने के बजाए वह "पिता की पत्नी" कहता है - यह इशारा है सौतेली मां की ओर। यह व्यक्ति ऐसे अधर्म का दोषी था जिसे दूसरे समाज के लोग भी बुरा कहते थे (इसकी निंदा मूसा की व्यवस्था में भी की गई थी) लैव्य. १८:८; २२:३०; २७:२०।

५:२ - *"घमण्ड करते हो"* - घमण्ड - क्या वे अपने संसारिक ज्ञान के लिये इस विषय में घमण्डी थे? क्या वे यह सोचते में पड़े हुए एक व्यक्ति के प्रति स्थानीय कलीसिया का रूख क्या होना चाहिये। शोक होना चाहिये, इसलिये कि मसीह के नाम की निंदा हुई है और मसीह भाई इतना नीचे गिर चुका हे कि कलीसिया पर परमेश्वर के दण्ड का खतरा है। इसलिये यह उनकी ज़िम्मेदारी है कि वे उसे संगति से बाहर निकालें, चाहे वह अगुवा क्यों न हो - या यदि वह एक अगुवा है जो पश्चाताप कर उस बुराई को छोड़ता नहीं है। जो कलीसिया ऐसे अनुशासन को लागू नहीं करती है वह परमेश्वर के दण्ड को पाएगी - ११:३०-३२।

५:३ - क्या लोगों को व्यक्तिगत् रीति से परखना कलीसिया के अगुवों का कार्य है? हां, यह उनका कर्तव्य है कि कलीसिया को शुद्ध रखें, पाप के लिये और ऐसी बातों के लिये डांटें जो मसीह द्वारा सिखाए गए पवित्र मार्ग के विरोध में हैं। पद १२, ३; मत्ती १८:१५-१७; प्रे. काम ५:१-११ देखें। यह वह नहीं कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को जांचता और दोष लगाता है। जो कि हमें नहीं करना चाहिये - ४:३-५; मत्ती ७:१-५; रोमि. १४:४,१३। यह कलीसियाई बात है और यह कि संगति के योग्य कौन है, एक कलीसिया को कौन सा स्तर बनाए रखना है।

५ अधिकार के साथ हमारे प्रभु यीशु की सामर्थ के साथ इकट्ठे हो, तो ऐसा मनुष्य, हमारे प्रभु यीशु के नाम से, शरीर के
६ विनाश के लिए शैतान को सौंपा जाए, ताकि उसकी आत्मा प्रभु यीशु के दिन में मुक्ति पाए। तुम्हारा गर्व करना अच्छा नहीं।
७ क्या तुम नहीं जानते कि थोड़ा सा खमीर पूरे गूंधे हुए आटे को खमीर कर देता है? पुराना खमीर निकाल कर अपने आपको
शुद्ध करो, कि नया गूंधा हुआ आटा बन जाओ; ताकि तुम अखमीरी हो, क्योंकि मसीह, जो हमारे फसह हैं, बलिदान हुए
८ हैं। इसलिए आओ, हम उत्सव में आनन्द मनाएं, न तो पुराने खमीर से और न बुराई और दुष्टता के खमीर से, परन्तु

५:४,५ - प्रभु यीशु के नाम में, उनकी उपस्थिति में और उनकी सामर्थ के द्वारा उचित अनुशासन किया जाना चाहिए। वह कलीसिया के महान शुद्ध करने वाले हैं और उसके सिर और प्रभु हैं। स्थानीय कलीसिया को उनके अधिकार पर चलना है। पाप करने वाले मसीही को शैतान के हाथ में सौंपने का अर्थ उसे कलीसिया से बाहर निकाल देना है और जब तक वह पश्चाताप नहीं करता, तब तक उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखना है - पद ११,१३। और ऐसा लगता है कि इसका अर्थ है, - उसे पीड़ित करने के लिए शैतान को अवसर देना। कलीसिया के बाहर संसार है, जो कि शैतान का क्षेत्र है (यूह. १४:३०; इफि. २:२। कुलु. १:१३; १ यूह. ५:१९। शैतान को यह अधिकार है कि परमेश्वर की अनुमति से लोगों की देह को सताए (अय्यूब २:४-७)। उसके पास मृत्यु की सामर्थ है (इब्रा. २:१४; १ इति. २१:१; मत्ती ४:१-१० में शैतान पर नोट्स देखें।

शैतान को सौंपा जाना एक भयानक और कष्टदायक अनुशासन है। यहाँ पौलुस एक अच्छे उद्देश्य के विषय में बताता है। वह चाहता था कि मनुष्य की देह नष्ट हो जाए और आत्मा बच जाए।

"शरीर के विनाश के लिये" - यहाँ यूनानी शब्द 'सार्क्स' है, जिसके अनेक अर्थ हैं। इसका अर्थ शारीरिक देह या मनुष्य का पापमय स्वभाव हो सकता है। ऐसा लगता है कि पौलुस उस व्यक्ति की मृत्यु या यथार्थ देह के नाश होने के विषय कह रहा है। यहाँ वह पापमय स्वभाव के नाश होने के विषय नहीं कह रहा है। विश्वासी में पापमय स्वभाव इस संसार में कभी नाश नहीं होता है (रोमियों के ७ वें अध्याय पर नोट्स देखें)। शैतान एक पापमय स्वभाव को नाश करने में नहीं लगा हुआ है, हाँ शरीर को अवश्य, जिसमें उसका पुराना स्वभाव है।

"ताकि उसकी आत्मा ... मुक्ति पाए" - अपने लोगों को अनुशासित करने में परमेश्वर के पास उद्देश्य रहता है (११:३२; इब्रा. १२:७-११)। इससे पहले कि लोग और अधिक पाप में लिप्त हो जाएं, क्या यह संभव है कि लोगों को बचाने का मात्र एक उपाय है, उन्हें मृत्यु के द्वारा उठा लेना? ये पद यही दिखाते हैं। ११:३० भी देखें। यदि यह आवश्यक हुआ, तो हम यह मान सकते हैं कि परमेश्वर ऐसा कर सकते हैं, बजाय इसके कि अपने एक विश्वासी को हमेशा के लिए नाश होने दे (यूह. ६:४६,५०)।

५:६ - पद २। इसका अर्थ है कि पाप का छोटा-सा आरंभ कलीसिया के द्वारा हो सकता है, किंतु सब में फैल जाता है। इसलिये यह आवश्यक है कि सख्ती से और तुरंत इससे निबटा जाना चाहिये। यदि मण्डली ऐसा नहीं करती है, लोग यह सोच सकते हैं कि अधर्म या दुष्टता गंभीर बात नहीं है और मसीही जीवन में सब कुछ मान्य है।

५:७ - *"पुराना खमीर"* - का अर्थ है पुरानी भ्रष्ट आदतें। कलीसिया एक नए गूंधे हुए आटे के समान है और इसमें पुरानी बातों के लिये कोई स्थान नहीं है। इफि. ५:२५-२७; कुलु. ३:५-१२। फसह का भोज ऐसी रोटी के साथ खाया जाता है, जो बिना खमीर का होता है। खमीर दुष्टता या बुराई को दिखाता है निर्ग. १२:१४,१५; लैव्य. २३:५,६ देखें। क्रूस पर मसीह की मृत्यु, आत्मिक रीति से इस फसह का पूरा होना था (मत्ती २६:२६-२८)। यूह. १:२६; ६:५३-५८।

५:८ - फसह के मनाने का अर्थ यथार्थ में पुराने यहूदी त्यौहार का मनाना नहीं है। यह करने के लिये मसीहियों को कभी सिखाया नहीं गया। विश्वासियों के उत्सव का अर्थ है मसीह जो फसह हैं उनके संबंध में जो सच्चाई है उस पर मनन करना। यह नए जीवन में उनके साथ सहभागिता करना है। घमण्ड, पार्टीबाजी, अनैतिकता, बेईमानी आदि का इस त्यौहार या पर्व में कोई स्थान नहीं है।

६,१० सीधाई और सच्चाई की अखमीरी रोटी से। मैंने अपने पत्र में तुम्हें लिखा है कि व्यभिचारियों की संगति न करना। यह
नहीं कि तुम बिलकुल इस जगत के व्यभिचारियों, या लोभियों, या अन्धेर करनेवालों, या मूर्तिपूजकों की संगति न करो; क्योंकि
११ ऐसा हुआ तो तुम्हें जगत में से निकल जाना पड़ेगा। मेरा कहना यह है कि यदि कोई भाई कहलाकर व्यभिचारी, या लोभी,
१२ अन्याय करनेवाला हो, तो उसकी संगति मत करना; बल्कि ऐसे मनुष्य के साथ खाना भी न खाना। क्योंकि मुझे बाहरवालों
१३ का न्याय करने से क्या काम? क्या तुम भीतरवालों का न्याय नहीं करते? परन्तु बाहरवालों का न्याय परमेश्वर करते हैं;
इसलिए उस कुकर्मी को अपने बीच में से निकाल दो।

६ क्या तुममें से किसी को यह हिम्मत है कि जब दूसरे के साथ झगड़ा हो, तो फैसले के लिए अविश्वासियों के पास जाए, और
२ पवित्र लोगों के पास न जाए? क्या तुम नहीं जानते कि पवित्र लोग जगत का न्याय करेंगे? इसलिए जब तुम्हें जगत का
३ न्याय करना है, तो क्या तुम छोटे से छोटे झगड़ों का भी फैसला करने के योग्य नहीं? क्या तुम नहीं जानते कि हम स्वर्गदूतों
४ का न्याय करेंगे? तो क्या सांसारिक बातों का फैसला न करें? इसलिए यदि तुम्हें सांसारिक बातों का फैसला करना हो, तो

५:६-११ - जिस प्रकार से विश्वासी संसार के लोगों के साथ व्यवहार करते हैं वैसे ही उन्हें पाप करने वाले सभी मसीहियों के साथ व्यवहार नहीं करना चाहिये। विश्वासी संसार में रहते हैं और पापी लोगों से बच नहीं सकते। किंतु जो व्यक्ति भाई कहलाता है किंतु बुराई में लगा हुआ है, तो बात अलग है। यह साफ आज्ञा है कि हमें ऐसे लोगों के साथ मिलना जुलना और खाना पीना नहीं करना है (१ थिस्स. ३:६ भी देखें)।

५:१२-१३ - पद ३; ६:१-५; ११:३१। हालांकि हमें दूसरे लोगों को जांचने और दोष लगाने का अधिकार नहीं है। कलीसिया को यह अधिकार है कि किसे अपनी संगति में भागीदार करे या न करे। उन्हें इस अधिकार का उपयोग भी करना चाहिये। जब दुष्ट लोग निकाल दिये जाते हैं, तो कलीसिया पवित्रता और सामर्थ में बढ़ सकती है। जब उन्हें निकाला नहीं जाता है, तब खतरा है। यदि व्यभिचारी, चोर और बेईमान लोगों को संगति दी जाती है, परमेश्वर बड़ी मात्रा में अपनी आशीष वापसी ले सकते हैं। ऐसी कलीसिया में बहुत आत्मिक वरदान हो सकते हैं, और सेवकाई में दिखती सफलता भी, किंतु वहाँ की सड़ाहट सच्चे आत्मिक जीवन को नष्ट करेगी।

अध्याय ६

६:१-८ - कुछ मसीही सोचते हैं कि संसारिक अदालत में मसीही के विरोध में जाने में कोई आपत्ति नहीं। यहाँ तक कि पूरी मण्डलियां और डिनोमिनेशन्स कभी-कभी इसमें लगे रहते हैं। यहाँ पर प्रेरित पौलुस के ईश्वर प्रेरित शब्द इस बात की निंदा करते हैं। यह शर्मनाक बात है (पद ५)। यह कलीसिया में बुद्धि की कमी को दिखाता है पद ५। इसका अर्थ यह भी है कि कलीसिया अपने मसीही जीवन में और चालचलन में असफल है (पद ७)।

६:१ - *"अविश्वासियों"* - इसका अर्थ है कलीसिया के बाहर के लोग या संसारिक लोग इफि. २:१२। "पवित्र लोग" विश्वासी हैं, न कि विशेष प्रकार के पवित्र विश्वासी (रोमि. १:७ पर नोट्स देखें)। शब्द "हिम्मत" पर ध्यान दें। अदालत में मसीहियों का लड़ना पौलुस के लिये एक धक्का था और पूर्ण रूप से गलत भी। मत्ती ५:२३-२६ देखें। मसीहियों के बीच के आपसी झगड़ों को कलीसिया में ही निबटाना चाहिये।

६:२ - यह उस न्याय की ओर संकेत करता है जो यीशु के फिर से आने पर होगा। मसीह के लोग यीशु के साथ शासन करेंगे (२ तीमु. २:१२; प्र. वा. ३:२१; २०:४)। वे परमेश्वर के साथ प्रशासन और न्याय करने में भाग लेंगे (मत्ती १९:२८; लूका २२:३०; प्रा वा.. २:२६,२७)।

६:३ - मसीह के साथ शासन और न्याय करने का अर्थ है सृष्टि की प्रत्येक वस्तु पर, जिन्हें सिरजा गया है, सर्वोच्चम बातों पर भी शासन करना, उनका न्याय करना। तो क्या मसीही लोग इस पृथ्वी की छोटी-मोटी बातों का समाधान नहीं निकाल सकते?

६:४ - ऐसा लगता है कि वह व्यंग कर रहा है, या इसे प्रश्न के रूप में पेश कर सकते हैं - "क्या तुम उन्हें न्यायी नियुक्त करते हो, जिनका कलीसिया में कोई स्थान नहीं है?"

५ क्या उन्हीं को बैठाओगे जो कलीसिया में कुछ नहीं समझे जाते हैं? मैं तुम्हें शर्मिन्दा करने के लिए यह कहता हूं। क्या सचमुच
६ तुममें एक भी बुद्धिमान नहीं मिलता, जो अपने भाइयों का न्याय कर सके? यहां तो भाई भाई में मुकद्दमा होता है, और
७ वह भी अविश्वासियों के सामने! परन्तु सचमुच तुममें बड़ा दोष तो यह है कि आपस में मुकद्दमा करते हो। इसके बजाए
८ अन्याय क्यों नहीं सह लेते? अपनी हानि क्यों नहीं सहते? बल्कि अन्याय करते और हानि पहुंचाते हो, और वह भी भाइयों
९ को। क्या तुम नहीं जानते कि अधर्मी लोग परमेश्वर के राज्य के वारिस न होंगे? धोखा न खाओ; न वेश्यागामी, न मूर्तिपूजक,
१० न परस्त्रीगामी, न लुच्चे, न पुरुषगामी; न चोर, न लोभी, न पियक्कड़, न गाली देनेवाले, न अन्धेर करनेवाले परमेश्वर के
११ राज्य के वारिस होंगे। पहले तुममें से कई ऐसे ही थे, परन्तु तुम प्रभु यीशु मसीह के नाम से और हमारे परमेश्वर के आत्मा
१२ से धोए गए, और पवित्र हुए और धर्मी ठहरे। सब वस्तुएं मेरे लिए उचित तो हैं, परन्तु सब वस्तुएं लाभ की नहीं। सब

६:५ - *"बुद्धिमान"* - उनमें से कुछ सोचते हैं कि वे बहुत बुद्धिमान हैं। पौलुस कह रहा है, उनका व्यवहार यह संदेह उत्पन्न करता है कि उनमें से एक भी बुद्धिमान नहीं था।

६:७ - मसीही लोगों का एक दूसरे के विरोध में अदालत में जाना हार ही नहीं, किंतु पूरी हार है। वे इस संसार का आत्मा, लोभ, ईर्ष्या और बदले की भावना से हार चुके हैं। अपनी मसीही गवाही और मसीह के लिए नाम बनाए रखने का उन्हें कोई ध्यान नहीं। उनकी दीनता, परमेश्वर के लिये प्रेम और आज्ञाकारिता लोप हो चुकी है। (यदि वास्तव में ये गुण कभी उनके जीवन में थे)। अदालत में जाकर अपने अधिकारों के लिये मसीहियों के लड़ने से बेहतर यह है, कि वे अन्याय को सह लें और अपने अधिकार को खो दें। मत्ती ५:३८-४१; लूका ६:२३ और १४:३३ देखें।

६:८ - यह दुख की बात है कि मसीही कहलाने वालों के जीवन में ऐसा था और वर्तमान समय में भी है।

६:९ - *"क्या तुम नहीं जानते"* - पद २,३,१९; ३:१६ यह स्पष्ट है कि पौलुस सोच रहा था कि इन लोगों को मसीही होने का अर्थ मालूम है या नहीं। क्या वे यह सोचते हैं कि अपने आपको मसीही विश्वासी कहलाने से, वे जैसा चाहे जीवन जी सकते हैं? ३:१८; १५:३३; गल. ६:७; इफि. ५:६; १ यूह. ३:७। इस संसार मे धोखा खाना आसान बात है (यिर्म. १७:९; इब्रा. ३:१३; प्रका. १२:९)। लोग यह सोचना मांगते हैं कि वे चाहे जैसे जीवन बिताएं, परमेश्वर के राज्य और कलीसिया में बने रह सकते हैं। वे गलती कर रहे हैं। परमेश्वर का राज्य दुष्ट लोगों के लिये नहीं, किंतु उनके लिये है जो पश्चाताप करते हैं, जो मन से दीन हैं, और जो धार्मिकता को इतना चाहते हैं कि सताव के लिये तैयार हैं (मत्ती ३:२; ४:१७; ५:३,१०)। वे जो अपने विश्वास को अच्छे कार्यों द्वारा प्रमाणित करते हैं (मत्ती २५:३४-३६; याकूब २:१४-२६)। प्रत्येक व्यक्ति जो मसीह का नाम लेता है, इन बातों को अपने मन में रखे और बुराई से बचा रहे (२ तीमु. २:१९)।

६:१० - इफि. ५:५; कुलु. ३:५,६; प्रका. २१:८।

६:११ - *"तुम में से कई ऐसे ही थे"* - दूसरे लोगों के समान ही सच्चे विश्वासी एक समय पापी थे (इफि. २:३; तीतुस ३:३)। किंतु पहले उनका जीवन जैसा था, अभी नहीं है।

"धोए गए" - यूह. १३:१०; १५:३; तीतुस ३:५।

"पवित्र हुए" - यूह. १७:१७-१९।

"धर्मी ठहरे" - रोमि. ३:२४। वे मसीह में नयी सृष्टि थे (२ कुरिं. ५:१७)। यह परमेश्वर के आत्मा का कार्य था।

६:१२-२० - अब मसीह में विश्वासियों की स्वतंत्रता के विषय पौलुस बात करता है। दूसरी कलीसियाओं को लिखते हुए, पौलुस ने कहा था कि विश्वासी व्यवस्था के अधीन नहीं हैं (रोमि. ६:१४)। मसीह ने उन्हें आज़ादी दी थी (गल. ५:१)। भोजन और दिनों के मानने के संबंध में कोई मनाही नहीं है (रोमि. १४:१-६,१४)। ऐसा लगता है कि कुरिंथ में कुछ मसीही पौलुस की शिक्षा को तोड़ मरोड़ रहे थे और कह रहे थे कि विश्वासी जो भी चाहे कर सकता है, यहाँ तक कि यौन संबंधी पाप भी। पौलुस इस गलत शिक्षा का विरोध करता है। वह दिखाता है कि विश्वासी लोग व्यवस्था से इसलिये मुक्त नहीं किये गये ताकि पाप करें, किंतु इसलिये कि पाप न करें। विश्वासियों को दी गई स्वतंत्रता के बारे में वह दो प्रतिबंध देता है (१०:२३,२४,३१)।

१३ वस्तुएं मेरे लिए उचित हैं, परन्तु मैं किसी बात का गुलाम न बनूंगा। भोजन पेट के लिए, और पेट भोजन के लिए है, परन्तु
परमेश्वर इसको और उसको, दोनों ही को नाश करेंगे, परन्तु देह व्यभिचार के लिए नहीं, लेकिन यीशु के लिए है, और यीशु
१४,१५ देह के लिए हैं। परमेश्वर ने अपनी सामर्थ से यीशु को जिलाया, और हमें भी जिलाएंगे। क्या तुम नहीं जानते, कि तुम
१६ लोगों की देह मसीह के अंग है? तब क्या मैं मसीह के अंग लेकर उन्हें वेश्या के अंग बनाऊं? बिल्कुल नहीं! क्या तुम नहीं
जानते कि जो कोई वेश्या से संगति करता है, वह उसके साथ एक तन हो जाता है, क्योंकि परमेश्वर कहते हैं कि वे दोनों
१७,१८ एक तन होंगे। जो प्रभु की संगति में रहता है, वह उनके साथ एक आत्मा हो जाता है। व्यभिचार से बचे रहो। जितने
१९ और पाप मनुष्य करता है, वे देह के बाहर हैं, परन्तु व्यभिचार करनेवाला अपनी ही देह के विरुद्ध अपराध करता है। क्या
तुम नहीं जानते कि तुम्हारी देह पवित्रात्मा का भवन है, जो तुममें बसा हुआ है और तुम्हें परमेश्वर की ओर से मिला है,
२० और तुम अपने नहीं हो? परंतु दाम देकर मोल लिए गए हो, इसलिए अपनी देह के द्वारा परमेश्वर को आदर दो।

७ उन बातों के विषय में जो तुमने लिखीं यह अच्छा है, कि पुरुष स्त्री को न छुए। परन्तु व्यभिचार के डर से हर एक पुरुष

उन्हें केवल वही करना चाहिये जो लाभदायक है और किसी इच्छा या आदत का गुलाम नहीं बनना चाहिये। (रोमियो ६:१६-१८; यूह. ८:३४ से तुलना करें)।

पद १३ दिखाता है कि कुछ लोग यह सोचते थे कि जिस प्रकार वे कुछ भी खा सकते हैं, उसी प्रकार यौन संबंधी पाप करने के लिये भी वे स्वतंत्र हैं। परंतु विश्वासियों की देह को परमेश्वर मृतकों में से जी उठाएंगे ताकि महिमा और पवित्रता में अनंत जीवन बिताएं (पद १४)। इसलिए विश्वासियों को यह बात समझनी चाहिये और परमेश्वर के उद्देश्य के लिये अपनी देह का उपयोग करना चाहिये।

६:१५ - १२:२७; रोमि. १२:४,५; इफि. १:२२,२३ देखें। किसी भी विश्वासी को वह करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये जो यीशु स्वयं नहीं करेंगे।

६:१६ - उत्पत्ति २:२४।

६:१७ - यूह. १७:२१-२३।

६:१८ - *"बचे रहो"* - उत्पत्ति ३९:११,१२; १ तीमु. ६:११; २ तीमु. २:२२। हम कहां भागें? नीति. १८:१०। विश्वासियों को यौन अनैतिकता का विचार तक नहीं करना चाहिये। मत्ती ५:२८; इफि. ५:३)। हमें यह देखने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये कि हम बिना पाप किए कितने निकट आ सकते हैं, किंतु जितना संभव है दूर रहें।

६:१९,२० - ३:१६ देखें। भवन या आराधनालय परमेश्वर के लिये है, स्वयं के लिये नहीं। यह उसकी आराधना और स्तुति के लिये अलग किया गया है। एक विश्वासी को अपनी देह इस प्रकार उपयोग नहीं करनी चाहिये जैसे कि वह उसी की हो। यहां पर मसीह में मिली आज़ादी की सीमा दिखती है। उन्हें वही बातें करनी चाहिये जो उनमें रहनेवाले परमेश्वर के आत्मा को भाती हैं और सम्मान देती हैं।

"तुम अपने नहीं हो" - यूहन्ना ६:३७; १७:६।

"दाम" - मत्ती २०:२८; १ पतरस १:१८,१९।

अध्याय ७

७:१-४० - कुछ सच्चाईयां हमें पौलुस की विवाह संबंधी शिक्षा को समझने में सहायता कर सकती हैं। पौलुस बाइबिल के पवित्र आत्मा द्वारा लिखे जाने के संबंध में कायल था (२ तीमु. ३:१६)। जो कुछ परमेश्वर ने अपने वचन में दिया है उसके विरूद्ध जाने की पौलुस स्वप्न में भी कल्पना भी नहीं कर सकता था। स्वयं परमेश्वर ने मानवजाति की भलाई के लिये विवाह को नियुक्त किया था (उत्पत्ति २:२०-२४; मत्ती १९:४-६)। अन्य किसी स्थान में पौलुस ने एक सुंदर और अर्थपूर्ण भाषा में विवाह संबंध का वर्णन किया है (इफि. ५:२५-३३)। उसने स्वयं विश्वासियों को विवाह करने से नहीं रोका और यह जाना

३,४ की पत्नी, और हर एक स्त्री का पति हो। पति अपनी पत्नी का हक्क पूरा करे, और वैसे ही पत्नी भी अपने पति का। पत्नी
को अपनी देह पर अधिकार नहीं, परंतु उसके पति का अधिकार है; वैसे ही पति को भी अपनी देह पर अधिकार नहीं, परन्तु
५ पत्नी को है। तुम एक दूसरे से अलग न रहो; परन्तु केवल कुछ समय तक आपस की सम्मति से, ताकि प्रार्थना के लिए
६ समय मिले, और फिर एक साथ रहो, ऐसा न हो कि तुम्हारे असंयम के कारण शैतान तुम्हें परखे। परन्तु मैं जो यह कहता
७ हूं, वह अनुमति है, न कि आज्ञा। मैं यह चाहता हूं कि जैसा मैं हूं, वैसा ही सब मनुष्य हों; परन्तु हर एक को परमेश्वर
८ की ओर से विशेष विशेष वरदान मिले हैं; किसी को किसी प्रकार का, और किसी को किसी और प्रकार का। परन्तु मैं
९ अविवाहितों और विधवाओं के विषय में कहता हूं कि उनके लिए ऐसा ही रहना अच्छा है, जैसा मैं हूं। परन्तु यदि वे संयम
१० न कर सकें, तो विवाह करें; क्योंकि विवाह करना कामातुर रहने से भला है। जिनका विवाह हो गया है, उनको मैं नहीं,
११ लेकिन प्रभु आज्ञा देते हैं कि पत्नी अपने पति से अलग न हो; (और यदि अलग भी हो जाए, तो बिना दूसरा विवाह किए

कि जो ऐसा करते थे वे धोखे में हैं (१ तीमु. ४:१-३)। उसने इस बात पर बल दिया कि प्रत्येक विश्वासी को यह स्वतंत्रता है, कि वह विवाह करे या न करे। उसने यह शिक्षा नहीं दी कि अविवाहित रहना विवाहित रहने से बेहतर है।

वह कुरिंथ के मसीहियों को लिख रहा था जिन्होंने उससे प्रश्न पूछा था। वर्तमान की समस्या को ध्यान में रखते हुए वह उन्हें लिख रहा था (पद २६), "समय कम था" (पद २६)। उसके विचार से, ऐसे समय में जो अविवाहित रह सकते थे उनके लिये यह भला था (पद ८,९)। कुछ बातें जो पौलुस ने यहां कही हैं वे सदा के लिये सत्य हैं। कुछ ऐसी थीं जो कुरिंथ की उस समय की परिस्थितियों से संबंधित थीं।

७:१ - पौलुस ने एक और स्थान पर सिखाया कि लोगों के लिये विवाह करना अच्छा है (१ तीमु. ५:१४)। वह निश्चित रीति से इब्रा. १३:४ से सहमत था।

७:२ - उन दिनों कुरिंथ में अविवाहित रहना भला था, लेकिन तभी जबकि विश्वासी यौन संबंधी पापों से बचे रहें (६:१३-१८)।

७:३-५ - यदि कोई पत्नी या पति इस सिद्धांत को नहीं अपनाता तो उस परिवार में समस्याएं आ सकती हैं।

७:५ - यदि वे अधिक समय तक एक दूसरे से अलग रहते हैं तो वे शैतान को अवसर दे सकते हैं कि वह उन्हें दूसरों के साथ पाप में गिराए।

७:६ - शायद पौलुस दूसरे पद की ओर संकेत कर रहा है। उसने न विश्वासियों को विवाह करने की आज्ञा दी और न अविवाहित रहने की।

७:७ - *"जैसा मैं हूं"* - अविवाहित (पद ८)।

"वरदान" - कुछ लोगों को परमेश्वर परिवार का दान देते हैं और कुछ को अविवाहित रहने का। निश्चय ही उनके सभी वरदान अच्छे हैं। परमेश्वर की दया से कुछ लोगों को विवाह करने की इच्छा और दूसरे विश्वासियों से विवाह करने का अवसर है। दूसरों को परमेश्वर की दया से बिना विवाह रहने की इच्छा और बिना अनैतिक व्यवहार के रहने की योग्यता है। मत्ती १९:११,१२ से तुलना करें। यह तब भी सत्य था और अभी भी है।

७:९ - सदा वासना में जलते रहना, यौन संबंधी प्रलोभनों से निरंतर संघर्ष करते रहना, हमारे आत्मिक जीवन के लिये हानिकारक है। परमेश्वर चाहते हैं कि उनके लोग चाहे विवाह करें या अविवाहित रहें, आत्मिक और विजयी जीवन बिताने वाले बनें।

७:१०,११ - इसके पहले उसने जो कुछ कहा था वह एक आज्ञा नहीं थी (पद ६)। विश्वासियों को यह स्वतंत्रता है कि वे विवाह करें या न करे। किंतु विवाह के बाद उन्हें यह स्वतंत्रता नहीं कि वे अपने साथी को तलाक दें। इसलिये वह मसीह की शिक्षा पर आधारित सत्य पर आज्ञा देता है - मत्ती ५:३२; १९:३-९; लूका १६:१८। विश्वासियों का विवाह तब तक स्थायी है जब तक पति या पत्नी जीवित है।

"लेकिन यदि" - ऐसा कभी कभी होता है जब विवाह में एक व्यक्ति दूसरे के साथ रहना कठिन पाता है, और छोड़ कर चला जाता है। ऐसे व्यक्ति को तब तक दूसरा विवाह नहीं करना चाहिये जब तक दूसरा साथी जीवित रहता है।

१२ रहे; या अपने पति से फिर मेल कर ले) और न पति अपनी पत्नी को छोड़े। दूसरों से प्रभु नहीं, परन्तु मैं ही कहता हूं
१३ कि यदि किसी भाई की पत्नी विश्वास न रखती हो, और उसके साथ रहने से प्रसन्न हो, तो वह उसे न छोड़े। और जिस
१४ स्त्री का पति विश्वास न रखता हो, और उसके साथ रहने से प्रसन्न हो; वह पति को न छोड़े। क्योंकि ऐसा पति जो विश्वास
न रखता हो, वह पत्नी के कारण पवित्र ठहरता है, और ऐसी पत्नी जो विश्वास नहीं रखती, पति के कारण पवित्र ठहरती
१५ है; नहीं तो तुम्हारे बेटे-बेटियां अशुद्ध होते, परन्तु अब तो पवित्र हैं। परन्तु जो पुरुष विश्वास नहीं रखता, यदि वह अलग
हो, तो अलग होने दो। ऐसी दशा में कोई भाई या बहन बन्धन में नहीं; परन्तु परमेश्वर ने तो हमें मेल मिलाप के लिए बुलाया
१६ है। क्योंकि हे स्त्री, तुम क्या जानती हो कि तुम अपने पति का उद्धार करा लो? और हे पुरुष, तुम क्या जानते हो कि
१७ तुम अपनी पत्नी का उद्धार करा लो? पर जैसा प्रभु ने हर एक को बांटा है, और जैसा परमेश्वर ने हर एक को बुलाया
१८ है, वैसा ही वह चले; और मैं सब कलीसियाओं में ऐसा ही ठहराता हूं। जो खतना किया हुआ बुलाया गया हो, वह खतनारहित
१९ न बने; जो खतनारहित बुलाया गया हो, वह खतना न कराए। न खतना कुछ है, और न खतनारहित, परन्तु परमेश्वर

७:१२-१६ - *"प्रभु नहीं"* - पौलुस का अर्थ यह नहीं है कि प्रभु ने इन परिस्थितियों के बारे में सिखाया नहीं था। उसका अर्थ यह था कि अपने पृथ्वी के दिनो के समय में यीशु ने उस विषय में कुछ नहीं कहा। पौलुस ने सिखाया था कि विश्वासी विश्वासी ही से विवाह करे (पद ३९; २ कुरिं. ६:१४,१५ आदि)। किंतु एक पति या पत्नी विवाह के पश्चात् विश्वासी बन भी सकता है और नहीं भी। ऐसी स्थिति के विषय में पौलुस साफ साफ निर्देश देता है।

७:१४ - ध्यान दें कि पौलुस "शुद्ध" और "पवित्र" शब्दों का उपयोग करता है। उसका यहां अर्थ अलग किये जाने से है। वह यह नहीं कर रहा है कि दूसरा साथी पाप से शुद्ध हो जाता है और नैतिक रीति से शुद्ध हो जाता है, क्योंकि उसने विश्वासी से विवाह किया है। उसका अर्थ है कि ऐसा विश्वासी उन अविश्वासियों से अलग किया जाता है, जिनका विवाह विश्वासियों से नहीं हुआ है - निस्संदेह, परमेश्वर उस अविश्वासी से बात करेंगे और ऐसे मिश्रित विवाह के कारण उत्पन्न बच्चों से अपने तरीके से व्यवहार करेंगे। पौलुस यह नहीं बताता कि उसका इससे क्या अर्थ है, लेकिन हम समझ सकते हैं कि व्यवहार करने के तरीके में भिन्नता वास्तविक और अर्थपूर्ण हो सकती है। "पवित्र" और "शुद्ध" के विषय में लैव्य. २०:७, यूह. १७:१७-१९ के नोट्स देखें।

७:१५ - *"मेल मिलाप"* - एक विश्वासी को अपने अविश्वासी पति या पत्नी के साथ जितना संभव हो, मेल से रहना चाहिये। उसे परेशान नहीं होना है यदि वह उसे छोड़ने का निश्चय करता है। ऐसी स्थिति में कोई दबाव या ज़ोर जबरदस्ती नहीं होनी चाहिये।

७:१६ - *"उद्धार"* - एक विश्वासी पत्नी या पति अपने पवित्र जीवन के द्वारा और अच्छे जीवन, प्रार्थना और धीरज के द्वारा अपने अविश्वासी जीवन साथी को मसीह में और उनके उद्धार में ला सकता है।

७:१७-२४ - इन पदों में पौलुस विवाह के विषय में जीवन की दूसरी स्थितियों को उदाहरण के रूप में लेकर विवाह के विषय में बात कर रहा है। परमेश्वर ने प्रत्येक व्यक्ति को एक निश्चित स्थिति के लिये बुलाया है और प्रत्येक के लिए एक स्थान निश्चित किया है। विश्वासी के लिये महत्वपूर्ण बात यह है कि वह अपने लिए परमेश्वर की इच्छा को जाने और आज्ञाकारी रहे। अपने जीवन के संबंध में किसी को शिकायत नहीं करनी चाहिये, परंतु यह मान लेना चाहिये कि परमेश्वर की इच्छा सर्वोत्तम है, और उसे दीनता से ग्रहण किया जाए।

७:१७ - हमें यह नहीं समझना चाहिये कि पौलुस केवल कुरिंथ की स्थिति के बारे में कह रहा है।

७:१८ - वे यहूदी जो मसीह में विश्वासी बन गए थे, उनको अपने यहूदीपन के चिन्हों को नष्ट नहीं करना चाहिये और गैरयहूदी विश्वासियों को यह नहीं सोचना चाहिये कि उन्हें खतना करवाना आवश्यक है (जैसा कि कुछ झूठे शिक्षक सिखा रहे थे - प्रे. काम १५:१)।

७:१९ - इस कलीसिया के युग में, देह पर एक चिन्ह होना या न होना कोई महत्व नहीं रखता है। परमेश्वर की इच्छा पूरा करना आवश्यक है। गल. ६:१५; रोमि. २:२५-२९ देखें।

२०,२१की आज्ञाओं को मानना ही सब कुछ है। हर एक जन जिस दशा में बुलाया गया हो, उसी में रहे। यदि तुम गुलाम की दषा
२२ में बुलाए गए हो तो चिन्ता न करो; परन्तु यदि तुम आज़ाद हो सको, तो ऐसा ही काम करो। क्योंकि जो दास की दशा
में प्रभु में बुलाया गया है, वह प्रभु द्वारा आज़ाद किया हुआ है; और वैसे ही जो आज़ादी की दशा में बुलाया गया है, वह
२३,२४मसीह का गुलाम है। तुम दाम देकर मोल लिए गए हो, मनुष्यों के दास न बनो। हे भाइयो, बहनो, जो कोई जिस दशा में बुलाया
२५ गया हो, वह उसी में परमेश्वर के साथ रहे। कुंवारियों के विषय में प्रभु की कोई आज्ञा मुझे नहीं मिली, परन्तु विश्वासयोग्य
२६ होने के लिए जैसी दया प्रभु ने मुझे पर की है, उसी के अनुसार सलाह देता हूं। इसलिए मेरी समझ में यह अच्छा है, कि
२७ आजकल क्लेष के कारण मनुष्य जैसा है, वैसा ही रहे। यदि तुम्हारे पास पत्नी है, तो उससे अलग होने का यत्न न करो;
२८ और यदि तुम्हारे पास पत्नी नहीं है, तो पत्नी की खोज न करो। परन्तु यदि तुम विवाह भी करो, तो पाप नहीं; और यदि
२९ कुंवारी का विवाह कर दिया जाए, तो कोई पाप नहीं; परन्तु ऐसों को शारीरिक दुख होगा, और मैं बचाना चाहता हूं। हे
भाइयो, बहनो, मैं यह कहता हूं कि समय कम किया गया है, इसलिए जिनके पास पत्नी हो, वे ऐसे रहें मानो उनके पास पत्नी नहीं।
३० और रोनेवाले ऐसे हों, मानो रोते नहीं; और आनन्द करनेवाले ऐसे हों, मानो आनन्द नहीं करते; और मोल लेनेवाले ऐसे
३१ हों, कि मानो उनके पास कुछ है नहीं। और इस संसार में रहने वाले ऐसे हों कि संसार ही के न हो लें; क्योंकि इस संसार
३२ के तौर-तरीके और परिस्थितियां बदलती जाती हैं। इसलिए मैं यह चाहता हूं कि तुम्हें चिन्ता न हो। अविवाहित पुरुष प्रभु
३३ की बातों की चिन्ता में रहता है कि यीशु को कैसे खुश रखे। परन्तु विवाहित मनुष्य संसार की बातों की चिन्ता में रहता
३४ है कि अपनी पत्नी को किस रीति से प्रसन्न रखे। विवाहिता और अविवाहिता में भी भेद है; अविवाहिता प्रभु को खुश करना
चाहती है, कि वह देह और आत्मा दोनों में पवित्र हो, परन्तु विवाहिता संसार की चिन्ता में रहती है कि अपने पति को प्रसन्न
३५ रखे। यह बात तुम्हारे ही लाभ के लिए कहता हूं, न कि तुम्हें फंसाने के लिए, बल्कि इसलिए कि जैसा ठीक लगता है, वैसा

७:२१,२२ - रोम साम्राज्य में उन दिनों गुलामी एक आम बात थी। बहुत से गुलाम मसीह में आ रहे थे। उन्हें अपनी गुलामी का क्या करना चाहिये? उसे शांतिपूर्वक ग्रहण करें या संभव हुआ तो स्वतंत्र होने का प्रयास करे (हां, किंतु हिंसा से नहीं)। वे इस बात को मान लें कि मसीह ने उन्हें छुड़ाया है - पाप, मृत्यु और मूसा की व्यवस्था के बन्धनों से। यूह. ८:३६; गल. ५:१ से तुलना करें। दूसरी ओर, वे लोग जो मनुष्यों के गुलाम नहीं हैं, उन्हें पहचानना चाहिये कि वे मसीह के गुलाम (रोमि. ६:१६-२२) हैं। दूसरे शब्दों में, हर परिस्थिति में यह जानना चाहिये कि मसीह के साथ उनका संबंध महत्वपूर्ण है और वे उनकी सेवा करें, उन्हें महिमा दें।

७:२३ - ६:२० देखें।

७:२४ - यह सत्य पौलुस ने तीसरी बार कहा है, यह बात इस सच्चाई के महत्व को दिखाती है (पद १७,२०)।
"परमेश्वर के साथ" - विश्वासी होने के नाते हम चाहे कैसी परिस्थिति में हो, हमें परमेश्वर की निकटता और उपस्थिति पर भरोसा रखना है।

७:२५ - पद १०,१२।

७:२६ - *"क्लेश"* - लूका २१:२३; २ कुरिं. ६:४; १ थिस्सल. ३:७ में भी यही शब्द उपयोग हुआ है। उसका अर्थ यहां यह है कि कुछ स्थितियों में विश्वासी के लिये बेहतर है कि विवाह न करे। यह भी सच है कि सभी परिस्थितियों में कुछ विश्वासियों के लिए विवाह न करना अच्छी बात है (कुछ ही लोगों के लिये) यिर्मयाह १६:१,२ से तुलना करें।

७:२९-३५ - *"समय कम किया गया है"* - पद २९। यह स्पष्ट नहीं कि पौलुस क्या कह रहा है। ऐसा लगता है कि वह जानता था कि मण्डली पर क्लेश आने वाला है। कुछ लोग सोचते हैं कि वह यीशु के जल्दी आने की ओर संकेत कर रहा है (तुलना करें रोमि. १३:११,१२)। न वह, न प्रेरित, यीशु के आने के विषय जानते थे। परंतु शायद उसे आशा थी कि जल्द ही बड़ा बदलाव आने वाला है (पद ३१)। वह चाहता था कि विश्वासी संसार के सबसे जरूरी कार्य के प्रति बोझ रखें - वह था यीशु की सेवा और उनके प्रति प्रेम (पद ३५)।

३६ ही किया जाए कि तुम एक मन होकर प्रभु की सेवा में लगे रहो। और यदि कोई यह समझे कि मैं अपनी उस कुंवारी का
हक्क मार रहा हूं, जिसकी जवानी ढल चली है, और आवश्यकता भी नहीं है, तो जैसा चाहे वैसा करे, इसमें बुरा नहीं, वह
३७ उसका विवाह होने दे। परन्तु जो मन में स्थिर रहता है, और उसको मज़बूरी न हो, वरन् अपनी इच्छा पूरी करने
में अधिकार रखता हो, और अपने मन में यह बात ठान ली हो कि मैं अपनी कुंवारी लड़की को बिन ब्याही रखूंगा, वह
३८ अच्छा करता है। इसलिए जो अपनी कुंवारी का विवाह कर देता है, वह अच्छा करता है, और जो विवाह नहीं कर देता,
३९ वह और भी अच्छा करता है। जब तक किसी स्त्री का पति जीवित रहता है, तब तक वह उससे बन्धी हुई है, परन्तु जब
४० उसका पति मर जाए, तो जिससे चाहे विवाह कर सकती है, परन्तु केवल प्रभु में। परन्तु जैसी है यदि वैसी ही रहे, तो
मेरे विचार में और भी आशीषित है, और मैं समझता हूं कि परमेश्वर का आत्मा मुझ में भी है।

८ अब मूर्तियों के सामने बलि की हुई वस्तुओं के विषय में : हम जानते हैं कि हम सब को ज्ञान है। ज्ञान घमण्ड उत्पन्न करता
२ है, परन्तु प्रेम से उन्नति होती है। यदि कोई समझे कि मैं कुछ जानता हूं, तो जैसा जानना चाहिए वैसा अब तक नहीं जानता।
३,४ परन्तु यदि कोई परमेश्वर से प्रेम रखता है, तो उसे परमेश्वर पहचानते हैं। इसलिए मूर्तियों के सामने बलि की हुई वस्तुओं
५ के खाने के विषय में: हम जानते हैं कि मूरत जगत में कोई वस्तु नहीं, और एक को छोड़ और कोई परमेश्वर नहीं। हालांकि

७:३६-३८ - पौलुस यह स्पष्ट करना चाहता है कि वह किसी को विवाह करने की मनाही नहीं कर रहा है। यहां तक कि उन बदलते और कठिन समयों में, वह कहता है कि विश्वासियों को स्वतंत्रता दी गई है कि प्रभु के साथ जीवन बिताते समय वे उन बातों को कर सकते हैं जो उन्हें ठीक लगती है।

७:३९ - पद १०; रोमि. ७:२। पौलुस इस बात पर बल देता है कि विश्वासी, विश्वासी से विवाह करे। "प्रभु में" का अर्थ यही है।

७:४० - *"आशीषित"* - क्या वे जो विवाह नहीं करते हैं, विवाहित लोगों से अधिक आनंदित रह सकते हैं? हां, अधिक प्रसन्न रह सकते हैं, यदि अविवाहित रहना परमेश्वर की ओर से उन्हें मिला हुआ वरदान है।

"परमेश्वर का आत्मा" - पौलुस जानता था कि उसके पास परमेश्वर का आत्मा है। वह सोच रहा था कि जो वह लिख रहा है, वह परमेश्वर की आत्मा की प्रेरणा से है।

अध्याय ८

८:१-१३ - उन दिनों मसीही विश्वासियों के बीच विभाजन का एक और कारण था - कुछ लोग कहते थे कि मूरतों के सामने चढ़ाया गया भोजन खाना गलत नहीं है, किन्तु कुछ लोगों का कहना था कि यह गलत है। इस विवाद से संबंधित कुछ सच्चाइयों को सभी जानते थे। परंतु पौलुस इस प्रश्न को ऊंचे स्तर पर ले जाता है। वह कहता है कि मसीही प्रेम, ज्ञान से अधिक महत्वपूर्ण है; और उस प्रेम के बिना ज्ञान हानिकारक हो सकता है। वह विश्वासियों के सामने ऊंचे स्तर के सिद्धान्तों को रखता है - अपने भाइयों से प्रेम रखो, उनकी उन्नति करने का प्रयास करो, और उन सारी बातों से दूर रहो जो उनके लिए रुकावट और हानि का कारण बनती हैं।

८:१ - किसी भी व्यक्ति में उसका ज्ञान, घमण्ड और कठोरता उत्पन्न कर सकता है। प्रेम में कार्य करने से लोग मसीही जीवन में बढ़ते हैं।

८:२ - किसी भी विषय के संबंध में कोई भी व्यक्ति सब कुछ नहीं जान सकता है। अपने छोटे छोटे से ज्ञान पर घमण्ड करना मूर्खता है। दीनता से यह स्वीकार करना कि हम कितना कम जानते हैं, बुद्धिमानी है।

८:३ - सारे ज्ञान से बढ़कर, परमेश्वर के लिये प्रेम है। अपने आप में यह सर्वश्रेष्ठ प्रकार का ज्ञान है (१३:२; १ यूह. ४:७,८)। परमेश्वर उन्हें जानते हैं, जो उनसे प्रेम रखते हैं - वह जानते हैं कि वे उनके हैं, वह उन्हें स्वीकार करते हैं (२ तीमु. २:१९; गलतियों ४:९ से तुलना करें)।

८:४ - व्यवस्था. ६:४; मजन ११५:२-८; यशायाह ४४:६-९।

८:५ - पौलुस का अर्थ है कि मूर्तिपूजक सोचते हैं कि स्वर्ग और पृथ्वी पर बहुत से प्रभु और ईश्वर हैं, किंतु मसीह में विश्वासी जानते

६ आकाश में और पृथ्वी पर बहुत से ईश्वर कहलाते हैं (जैसा कि बहुत से ईश्वर और बहुत से प्रभु हैं), तौभी हमारे एक
ही परमेश्वर हैं; अर्थात् पिता जिनकी ओर से सब वस्तुएं हैं, और हम उन्हीं के लिए हैं, और एक ही प्रभु हैं, अर्थात् यीशु
७ मसीह जिनके द्वारा सब वस्तुएं हुई, और हम भी उन्हीं के द्वारा हैं। परन्तु सब को यह समझ नहीं; परन्तु कई तो अब एक
मूरत को कुछ समझने के कारण मूर्तियों के सामने चढ़ायी हुई को कुछ वस्तु समझकर खाते हैं, और उनका विवेक निर्बल
८ होकर अशुध्द होता है। भोजन हमें परमेश्वर के निकट नहीं पहुंचता। यदि हम न खाएं, तो हमारी कुछ हानि नहीं, और
९ यदि खाएं, तो लाभ नहीं। परन्तु सावधान रहो, ऐसा न हो कि तुम्हारी यह स्वतंत्रता कहीं निर्बलों के लिए ठोकर का कारण
१० न हो जाए। क्योंकि यदि कोई तुम ज्ञानी को मूरत के मन्दिर में भोजन करते देखे, और वह निर्बल व्यक्ति हो, तो क्या
११ उसके विवेक में मूरत के सामने चढ़ायी हुई वस्तु को खाने का साहस न हो जाएगा? इस रीति से तुम्हारे ज्ञान के कारण

हैं कि एक ही सच्चे परमेश्वर हैं, प्रभु हैं। १०:२० में देखें कि वह तमाम ईश्वरों और प्रभुओं के बारे में जिन्हें लोग पूजते हैं, क्या कहता है। देखें प्रे. काम १४:१५।

८:६ - पद ४। यह कहना कि एक ही प्रभु यीशु मसीह हैं, इसका अर्थ यह नहीं कि पिता प्रभु नहीं हैं। स्वयं यीशु ने उन्हें प्रभु कहा (मत्ती ११:२५)। इसी प्रकार यह कहना कि एक परमेश्वर पिता हैं, इसका अर्थ यह नहीं कि यीशु मसीह परमेश्वर नहीं हैं। परमेश्वर पिता ने बाइबिल के लेखकों को प्रेरित किया कि वे यीशु को परमेश्वर कहें (यशा. ९:६; यूहन्ना १:१; प्रे. काम २०:२८; रोमि. ९:५; फिलि. २:६; कुलु. २:९; तीतुस २:१३; इब्रा. १:३,८; १ यूहन्ना ५:२०)।

पौलुस कहता है कि यीशु के द्वारा ही सारी वस्तुएं बनी - ये ही शब्द परमेश्वर के लिए रोमि. ११:३६ में उल्लेख किए गए हैं। यह कहना कि यीशु प्रभु हैं, का अर्थ है कि 'वह परमेश्वर हैं'। लूका २:११; फिलि. ६:१०,११ के नोट्स देखें। तो इसका अर्थ क्या यह हुआ कि दो परमेश्वर हैं। बिल्कुल नहीं। केवल एक परमेश्वर हैं जिनके तीन व्यक्तित्व हैं। मत्ती ३:१६,१७ आदि में त्रिएकत्व पर नोट्स देखें। पौलुस इस परमेश्वर को मात्र एक और सृष्टि का कर्ता बताता है (उत्पत्ति १:१; यशा. ४०:२५-२८)। केवल उन्हें ही हमको खोजना है, उन्हीं की आराधना करनी है और किसी की नहीं।

८:७ - उसका अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति यह नहीं जानता कि मूर्ति कुछ नहीं है और जो भोजन उसके साम्हने चढ़ाया जाता है वह अशुद्ध नहीं हो जाता है। वे सोचते थे कि ऐसा भोजन घर पर खाना भी ठीक नहीं है। जब वे उसे खाते थे तो उनका विवेक उन्हें दोषी ठहराता था। 'निर्बल' विवेक वह है, जो किसी वस्तु को अशुद्ध समझता है, किंतु वह अशुद्ध नहीं होती है या जो यह निश्चित नहीं कर पाता कि क्या पापमय है और क्या नहीं।

८:८ - कुरिंथुस में ऐसा कुछ लोगों ने कहा होगा। पौलुस इससे सहमत था, किंतु आगे के पदों में कहता है कि इससे बढ़कर एक सिद्धांत है।

८:९-१३ - १०:२३,३३; रोमि. १४:१४-२३ से तुलना करें।

विश्वासियों को यह स्वतंत्रता है कि क्या खाएं या क्या न खाएं। किंतु कुछ और ऐसी बातें हैं, जो इस आज़ादी से अधिक महत्व रखती है। सभी विश्वासियों को इनका ध्यान रखना है। स्वयं को प्रसन्न करने से बेहतर है कि वे अपने विश्वासी भाइयों को अधिक महत्वपूर्ण जानें।

८:१० - *"मूरत के मंदिर"* - बाद में पौलुस कहता है कि किसी भी विश्वासी को ऐसे स्थान में खाना नहीं चाहिये (१०:१९-२१)। वह निश्चित रीति से यह नहीं सिखा रहा है कि ऐसा करना उचित है।

८:११ - यीशु ने उन निर्बल लोगों को इतना प्रेम किया, कि उनके लिए उन्होंने अपने प्राण दे दिए। क्या मज़बूत विश्वासियों को उनसे इतना अधिक प्रेम नहीं करना चाहिये, कि उस प्रकार के आचरण से दूर रहें जिससे उनकी हानि की संभावना है?

"नाश हो जाएगा" - रोमि. १४:१५। इसका अर्थ है कि आत्मिक रीति से घायल हो जाएंगे। जैसा कि २ थिस्सल. १:९ में लिखा है, यह उस अंतिम नाश के संबंध में नहीं है, जो कि प्रभु की उपस्थिति से हट जाना है (यूह. ६:३७-४०; १०:२७-२९; रोमि. ५:९,१० और ८:२८-३९ देखें)।

१२ वह निर्बल भाई जिसके लिए मसीह मरे, नाश हो जाएगा। इसलिए भाइयों का अपराध करने से और उनके निर्बल विवेक
१३ को चोट देने से तुम मसीह का अपराध करते हो। इस कारण यदि भोजन मेरे भाई को ठोकर खिलाए, तो मैं कभी किसी
रीति से मांस न खाऊंगा, कहीं ऐसा न हो, कि मैं अपने भाई के ठोकर का कारण बनूं।

९ क्या मैं आज़ाद नहीं? क्या मैं प्रेरित नहीं? क्या मैंने यीशु को जो हमारे परमेश्वर हैं, नहीं देखा? क्या तुम प्रभु में मेरे बनाए
२,३ हुए नहीं? यदि मैं दूसरों के लिए प्रेरित नहीं, तौभी तुम्हारे लिए तो हूं; क्योंकि तुम प्रभु में मेरी प्रेरिताई पर छाप हो। जो
४,५ मुझे परखते हैं, उनके लिए यही मेरा उत्तर है। क्या हमें खाने-पीने का अधिकार नहीं? क्या हमें यह अधिकार नहीं कि किसी

८:१२ - जो कोई किसी व्यक्ति के पाप में गिरने का दोषी है, वह उस विश्वासी और मसीह दोनों का अपराधी है (प्रे. काम ९:४; भजन ५१:४)।

८:१३ - केवल भोजन के संबंध में ही नहीं, किंतु प्रत्येक स्थिति में इसी सिद्धांत का पालन पौलुस ने किया था। हमें भी ऐसा ही करना चाहिये (१०:२४,३२,३३)। यह प्रेम का सिद्धांत है। जो लोग इस प्रकार से प्रेम करते हैं, जैसे करना चाहिये, वे दूसरों की भलाई के लिये अपने आपका इंकार करने के लिए सदैव तैयार हैं।

अध्याय ९

९:१-२७ - जिस सिद्धांत को अध्याय ८ में पौलुस ने सिखाया था, वह था, दूसरों की भलाई के लिये अपनी इच्छा को मारना। इस अध्याय में वह विश्वासियों के सामने अपना नमूना रखता है। उसने ऐसा नहीं किया कि संदेश कुछ दे और जीवन उसके विपरीत हो। वह कई बार इस अध्याय में अपनी आज़ादी और अधिकार की बात करता है - पद १,४,५,१२,१९। किंतु उसने अपनी स्वतंत्रता और अधिकार का उपयोग अपने को प्रसन्न करने के लिये नहीं किया। वह यह सोचता था कि दूसरों को मसीह के पास लाने के लिये और उन्हें विश्वास में बढ़ाने के लिये क्या करें। अंत में वह यह कहता है कि अपनी इच्छाओं को मारना ही एक मात्र उपाय है जिससे मसीह का सेवक उन इनामों को पा सकता है, जिसकी प्रतिज्ञा मसीह ने अपने विश्वासयोग्य सेवकों से की है।

९:१ - *"आज़ाद"* - वह उस आत्मिक स्वतंत्रता के विषय में, खाने आदि के संबंध में नियमों (व्यवस्था) से स्वतंत्रता के विषय में कहता है।

"प्रेरित" - इसका अर्थ यह है, कि प्रेरितों के पास उतनी ही स्वतंत्रता और अधिकार होने चाहिये जितना दूसरे विश्वासियों को हैं।

"हमारे परमेश्वर हैं, नहीं देखा" - १५:८; प्रे. काम ९:३-५।

९:२ - कुछ लोग इस बात से इंकार कर रहे थे कि पौलुस एक प्रेरित है। किंतु कुरिंथुस के विश्वासियों को यह मूर्खता नहीं करनी चाहिये। उसकी सेवा द्वारा ही उन्होंने मसीह पर विश्वास किया था - ४:१५।

९:३ - जो इस बात का इन्कार करते थे कि वह प्रेरित है,उनके साम्हने वह पद १,२ में अपने बचाव पक्ष को रखता है।

९:४-१४ - इस भाग में, वह प्रेरितों के अधिकारों की बात करता है (या दूसरे बातों में, दूसरे जिन्हें मसीह अपने कार्य के लिये भेजते हैं।) ये अधिकार खाने पीने और जो कुछ वे करना चाहते थे उनके संबंध में थे (पद ४)। विवाह करने और अपनी पत्नियों को यात्रा में ले जाने के संबंध में थे (पद ५) और जिनकी सेवा वे करते थे, उनसे सहायता प्राप्त करने के संबंध में थे (पद ६-१४)।

९:४ - रोमि. १४:१४।

९:५ - *"प्रभु के भाई"* - प्रे. काम १:१४।

"कैफा" - यह पतरस का दूसरा नाम था (यूह. १:४२)। वह विवाहित था (मत्ती ८:१४), स्पष्ट है कि उसकी पत्नी यात्रा में उसके साथ जाया करती थी।

६ मसीही बहन से विवाह कर के अपनी सेवा जारी रखें, जैसा अन्य प्रेरित और प्रभु के भाई और कैफा करते हैं? या केवल
७, मुझे और बरनबास को अधिकार नहीं कि कमाई करना छोड़ें? कौन कभी अपनी जेब से खाकर सिपाही का काम करता
८ है? कौन अंगूर की बाग लगाकर उसका फल नहीं खाता? कौन भेड़ों कीरखवाली करके उनका दूध नहीं पीता? क्या ये बातें
९ मैं ही बोल रहा हूं? क्या व्यवस्था भी यही नहीं कहती? क्योंकि मूसा की व्यवस्था में लिखा है कि कोल्हू में चलते हुए बैल
१० का मुंह न बान्धना। क्या परमेश्वर बैलों ही की चिन्ता करते हैं? या विशेष करके वह हमारे लिए कहते हैं? हां! हमारे लिए
ही लिखा गया, क्योंकि उचित है कि जोतनेवाला आशा से जोते, और कोल्हू चलाने वाला लाभ पाने की आशा से कोल्हू चलाए।
११ इसलिए जबकि हमने तुम्हारे लिए आत्मिक वस्तुएं बोईं, तो क्या यह कोई बड़ी बात है कि तुम्हारी शारीरिक वस्तुओं की फसल
१२ काटें? जब दूसरों का तुम पर यह अधिकार है, तो क्या हमारा इससे अधिक न होगा? परन्तु हमने इस अधिकार का उपयोग
१३ नहीं किया, परन्तु सब कुछ सहते हैं कि हमारे द्वारा मसीह के सुसमाचार में बाधा न आने पाए। क्या तुम नहीं जानते कि
जो पवित्र वस्तुओं की सेवा करते हैं, वे भवन में से खाते हैं; और जो वेदी की सेवा करते हैं, वे वेदी के साथ भागी होते
१४,१५ हैं? इसी रीति से प्रभु ने भी ठहराया है कि जो लोग सुसमाचार सुनाते हैं, उनकी जीविका सुसमाचार से हो। परन्तु इन
बातों में मैंने अपने पूरे अधिकार का उपयोग नहीं किया, और मैंने तो ये बातें इसलिए नहीं लिखी, कि मेरे लिए ऐसा किया
१६ जाए, क्योंकि इससे तो मेरा मरना ही भला है, कि कोई मेरा घमण्ड बेकार ठहराए। यदि मैं सुसमाचार सुनाऊं, तो मेरा कुछ
१७ घमण्ड नहीं; क्योंकि यह तो मेरे लिए अवश्य है। यदि मैं सुसमाचार न सुनाऊं, तो मुझ पर हाय! क्योंकि यदि मैं अपनी इच्छा
से यह करता हूं, तो मज़दूरी मुझे मिलती है, और यदि अपनी इच्छा से नहीं करता, तौभी प्रबंधक का काम मुझे सौंपा गया
१८ है। इसलिए मेरी कौन सी मजदूरी है? जो सुसमाचार मैं सुनाता हूं इसके लिए मेरे सुनने वालों को कुछ नहीं देना है, ताकि

९:६ - प्रे. काम १८:३; २०:३४।

९:७ - वह इन उदाहरणों का उपयोग यह दिखाने के लिये करता है, कि यह कलीसियाओं का कर्तव्य है, कि वे मसीह के लिये कार्य करने वालों की आर्थिक सहायता करें।

९:८,९ - व्यवस्था. २५:४; १ तीमु. ५:१७,१८।

९:११ - इन उदाहरणों का उपयोग यहां है।

"आत्मिक वस्तुएं" - प्रेरित, संदेशवाहक, पास्टर और शिक्षक परमेश्वर का वचन बोते हैं (लूका ८:११)।

"शारीरिक वस्तुओं की फसल काटें" - वह सब जो उनके आर्थिक सहयोग के लिये आवश्यक था।

९:१२ - उस सिद्धांत को देखें जो पौलुस के जीवन में कार्य कर रहा था। मसीह के सुसमाचार के लिये वह अपने अधिकारों को खोने और हर ठोकर खिलाने वाली बात से अलग रहने के लिये तैयार था। २ तीमु. २:१० देखें। वह हम सब के लिये एक नमूना है (४:१६; ११:१०)।

९:१३ - लैव्य. ७:६,८-१०,१४, २८-३६।

९:१४ - पद ११, मत्ती १०:९,१०, लूका १०:७,८। यह सभी मण्डलियों और मसीहियों के झुण्ड की जिम्मेदारी है कि उनके मध्य कार्य करने वालों को अपनी योग्यता के अनुसार सहयोग देने का भरकस प्रयत्न करें। ऐसा कोई झुण्ड जो यह नहीं करता है, प्रभु के प्रति अनाज्ञाकारी है।

९:१५-१८ - परमेश्वर के गुप्त रहस्य पौलुस के ऊपर प्रगट किए गए थे (४:१,२)। मसीह ने उसे दूसरों को बताने के लिये नियुक्त किया था (प्रे. काम २०:२४; गलतियों २:७; इफि. ३:८)। वह यह करना चाहे या न चाहे, उसे ऐसा करना ही था। यदि वह सुसमाचार नहीं सुनाता है, तो कहता है कि मुझ पर 'हाय' (पद १६- यह शब्द एक प्रकार की सजा को दर्शाता है)। इसलिये शुभसंदेश सुनाना घमण्ड का कारण नहीं था। किंतु उसे घमण्ड का आधार मिल रहा था। वह यह था : कि वह बिना तनख्वाह के काम कर रहा था। इस प्रकार उसने यह सिद्ध किया कि उसकी नियत सही थी। वह नौकरी के रूप में सेवा नहीं कर रहा था, किंतु अपनी इच्छा से कर रहा था। वह एक ऐसे सैनिक के समान था, जो अपने खर्च से सेवा कर रहा था (पद ७)। वह अपने स्वामी मसीह की सेवा करने में प्रसन्न था। पद १८ में वह अपनी आय के संबंध में कहता है। बिना तनख्वाह सेवा करके अपनी ईमानदारी और प्रेम को प्रगट करना उसकी तनख्वाह थी।

१९ मसीही सन्देशवाहक के नाते मेरे हक के बारे में मुझ पर आरोप न लगे। सब से आज़ाद होने पर भी मैंने अपने आप को
२० सब का गुलाम बना दिया है, ताकि अधिक लोगों को मसीह के विश्वास में लाऊं। मैं यहूदियों के लिए यहूदी बना कि यहूदियों
को जीत लूं। जो लोग व्यवस्था के मानने वाले हैं, उनके लिए मैं व्यवस्था के आधीन न होने पर भी व्यवस्था के आधीन बना,
२१ कि उन्हें जो व्यवस्था के मानने वाले हैं, जीत लूं। व्यवस्थाहीनों के लिए मैं (जो परमेश्वर की व्यवस्था से हीन नहीं, परन्तु
२२ मसीह की व्यवस्था के आधीन हूं) व्यवस्थाहीन सा बना, कि व्यवस्थाहीनों को जीत लूं। मैं निर्बलों के लिए निर्बल सा बना,
२३ कि निर्बलों को जीत लूं; मैं सब मनुष्यों के लिए सब कुछ बना हूं, कि किसी न किसी तरह से कई लोगों को बचा लूं। मैं
२४ सब कुछ सुसमाचार के लिए करता हूं, कि दूसरों के साथ उसका भागी हो जाऊं। क्या तुम नहीं जानते कि दौड़ में तो दौड़ते
२५ सब ही हैं, परन्तु इनाम एक ही ले जाता है? तुम वैसे ही दौड़ो, कि जीत सको। खेलकूद प्रतियोगिता में भाग लेने वाला
हर एक व्यक्ति अपने को अनुशासित करता है। एक नाश होने वाले पुरस्कार को पाने के लिए ऐसा किया जाता है। परन्तु
२६ हम तो उस मुकुट के लिए करते हैं, जो मुरझाने का नहीं। इसलिए मैं तो इसी तरह से दौड़ता हूं, परन्तु बेठिकाने नहीं; मैं

९:१९ - अध्याय ८ और ९ मसीही स्वतंत्रता और आत्मिक आज़ादी के सही उपयोग के संबंध में हैं। यहां पौलुस कहता है कि दूसरों को मसीह के पास लाने में यदि उसे यह स्वतंत्रता त्यागनी पड़े तो उसके लिये वह तैयार है। इसका अर्थ यह था कि वह अपनी आज़ादी से अधिक लोगों से प्रेम करता था। दूसरों की भलाई करने की इच्छा की तुलना में उसकी व्यक्तिगत् पसंद या नापसंद का कोई स्थान नहीं था। खुद को प्रसन्न करने के बजाए वह दूसरों को प्रभु के लिए जीतने की चाह रखता था। अगले कुछ पदों में वह दिखाता है कि अपने आपको सभी का सेवक बनाने का अर्थ क्या है (या दास, यूनानी में दोनों ही अर्थ हो सकते हैं)। वह तीन प्रकार के लोगों की बात करता है - यहूदी, गैरयहूदी और जो विश्वास या विवेक में दुर्बल थे।

९:२० - वह ऐसे कार्य करता था जिनसे उसकी शिक्षा, यहूदियों को ग्रहण योग्य है - यदि वे बातें मसीही विश्वास और जीवन के विपरीत नहीं थी। इसका उदाहरण प्रे. काम १६:३; १८:१८; २१:२०-२६ में मिलता है।

९:२१ - *"व्यवस्थाहीन"* - रोमि. २:१२। जो लोग यहूदी नहीं थे, उनके मध्य कार्य करते समय उसने यहूदियों की रीति विधियों पर ध्यान नहीं दिया (रोमि. ८:४ देखें)। वह जानता था कि उसको मसीह द्वारा सिखाए गए आत्मिक नियमों को मानना है और परमेश्वर की आज्ञा का पालन करना है।

९:२२ - *"निर्बल"* - ८:७; रोमि. १४:१। वह सावधान था कि किसी को दुख न पहुंचाए, ठोकर न दे। उसने अपनी स्वतंत्रता और अधिकारों का त्याग किया ताकि अधिक आत्मिक बातों के लिये उन्हें जीत सके। स्वयं को प्रसन्न नहीं करना, किंतु दूसरों की भलाई सोचना उसका लक्ष्य था (रोमि. १५:१-३)।

९:२३ - क्या उसे पसंद है, क्या नहीं, उसकी इच्छाएं या अधिकार नहीं, किंतु सुसमाचार उसके लिये महत्वपूर्ण था। *"भागी"* का अर्थ है सुसमाचार की आशीषों में दूसरों के साथ हिस्सेदार होना।

९:२४-२७ - क्या हम उन पुरूस्कारों को प्राप्त करना चाहते हैं जो वह विश्वासयोग्य सेवा के लिये देना चाहते हैं? पौलुस ने जिस मार्ग को अपनाया वही मात्र एक मार्ग है। सुसमाचार के लिये यह अपने आपको इंकार करने वाला और अनुशासन वाला मार्ग है। तुलना करें मत्ती १०:३८; १६:२४; लूका ९:२३।

९:२४ - मसीही सेवा क्या एक दौड़ के समान है? कुछ मायनों में है देखें प्रे. काम २०:२४; २ तीमु. ४:७; इब्रा. १२:१। प्रत्येक जो दौड़ता है, इनाम नहीं पाता है। जिस इनाम के विषय में पौलुस कहता है वह उद्धार नहीं है (उद्धार वह वरदान है जो सभी विश्वासियों के पास है - इफि. २:८,९)। पुरूस्कार, मसीही सेवा के लिये प्रतिफल है।

९:२५ - *"मुकुट"* - २ तीमु. ४:८ के नोट्स। नया नियम अनेक मुकुटों के विषय कहता है, जो मसीह के सेवक पा सकते हैं - १ थिस्स. २:१९; २ तीमु. ४:८; याकूब १:१२; १ पत. ५:४। इस पृथ्वी के पुरूस्कारों को पाने के लिये खिलाड़ी काफी कष्ट उठाते हैं, और अनुशासन में रहते हैं। क्या मसीह के सेवकों को इतना बुद्धिमान नहीं होना चाहिये कि उतने ही समर्पित हों? हम अनंतकालिक पुरूस्कार प्राप्त कर सकते हैं।

९:२६ - पौलुस एक लक्ष्य के साथ दौड़ रहा था - फिलि. ३:१३,१४। वह मात्र दिखावा नहीं कर रहा था। वह वास्तव में संघर्ष कर

२७ भी इसी रीति से मुक्कों से लड़ता हूं, परन्तु उसके समान नहीं जो हवा पीटता हुआ लड़ता है। परन्तु मैं अपनी देह को
मारता कूटता, और वश में लाता हूं; ऐसा न हो कि दूसरों को उपदेश देकर मैं स्वयं ही अयोग्य घोषित कर दिया जाऊं।

१० हे भाइयो, बहनो, मैं नहीं चाहता कि तुम इस बात से अनजान रहो, कि हमारे सब पूर्वज बादल के नीचे थे। वे सब के सब समुद्र
२,३ के बीच से निकलकर दूसरे तट पर पहुंच गए। सब ने बादल में, और समुद्र में, मूसा का बपतिस्मा लिया। सब ने एक
४ ही आत्मिक भोजन किया। सब ने एक ही आत्मिक जल पिया, क्योंकि वे उस आत्मिक चट्टान में से पीते थे, जो उनके साथ-साथ

रहा था, वह भी जीत हासिल करने के लिये - २ तीमु. ४:७।

९:२७ - *"मारता कूटता और वश में लाता"* - यूनानी में इसका अर्थ है "आंख के नीचे मारना," यह मुहावरे वाली भाषा में है। यहां शारीरिक रीति से मारने कूटने की बात नहीं है। वह आत्मसंयम के विषय कह रहा है। वह अपनी देह को पुचकारता नहीं था, लेकिन उसे आज्ञा मानने के लिये मज़बूर करता था। ऐसा लगता है, उसने पहचाना कि उसकी देह एक खतरा साबित हो सकती है, यदि उसे शासन करने का अवसर दिया गया, (तुलना करें रोमि. ७:२४)। उसने अपनी देह का गुलाम बनने से इंकार किया, किंतु अनुशासन और स्वयं को नकारने के द्वारा, अपनी देह को गुलाम बनाने का लक्ष्य बनाया। वह भविष्य में पिता द्वारा स्वीकार किए जाने वाला अनंत पुरूस्कार प्राप्त करना चाहता था। उसके लिये वह वर्तमान के शारीरिक आराम और ऐश को त्यागना चाहता था।

स्पष्ट है कि पवित्र, आत्मिक, फलदायक मसीही जीवन जीने का आसान रास्ता वह नहीं जानता था। उसके लिये इस मार्ग में संघर्ष और शरीर को अधीन करने का निर्णय था।

"मैं स्वयं ही अयोग्य घोषित कर दिया जाऊं" - वह यह नहीं कह रहा है कि उसे उद्धार खोने का भय है (तुलना करें ३:१२-१५; २ तीमु. २:५)। यह शरीर बुरे स्वभाव का घर है। यह मात्र अपनी इच्छाओं और भूख की तृप्ति चाहता है। जो शरीर वश में न किया गया हो वह व्यक्ति को अपने वश में कर लेगा। यह पेटूपन, पियक्कड़पन, अनैतिकता और शरीर के दूसरे पापों की ओर ले जाएगा।

अध्याय १०

१०:१-११ - अध्याय ९ के अंतिम पदों में पौलुस स्वयं का इंकार करने और अनुशासन की आवश्यकता के बारे में कहता है। वह अपने आपको इस बात का नमूना भी कहता है। वह अब पद ६,११ में इस्राएल के इतिहास से उनका उदाहरण देता है, जिन्होंने उस पर अमल नहीं किया। वह बुरी इच्छाओं का गुलाम बनने के भयानक परिणाम भी बताता है।

१०:१ - *"बादल"* निर्गमन १३:२१,२२। *"समुद्र"* - निर्ग. १४:२१,२२,२६। पौलुस कह रहा है उन सभों ने - पूरे इस्राएल देश ने - मिस्र से निकलकर कनान की ओर यात्रा आरंभ की।

१०:२ - *"बपतिस्मा लिया"* - समुद्र को पार करने का रास्ता बपतिस्मे के समान था। मिस्र में बिताए पुराने जीवन से पूरी तरह नाता तोड़ने की यह तस्वीर थी। उन्हें "मूसा में" बपतिस्मा मिला था। यूनानी शब्द का अर्थ में, 'में', 'लिए', 'पर', 'के लिए' के बारे में भी है। अर्थ यह है कि वे मूसा के नेतृत्व में लाए गए थे। कनान की यात्रा के लिये जाने वाले सभी लोगों के लिये उसे अगुवा होना था। मसीही बपतिस्मे का भी यही अर्थ है। यह उस नए जीवन की ओर संकेत करता है जो मसीह की आधीनता में जिया जाता है, जो कि कलीसिया के प्रधान हैं।

१०:३ - यह भोजन मन्ना था, देखें निर्ग. १६:१४,१५।

१०:४ - निर्गमन १७:५,६। 'मन्ना' और 'जल' आत्मिक कहलाते हैं, क्योंकि वे परमेश्वर के आत्मा द्वारा अद्‌भुत रीति से दिए गए थे। जिस चट्टान से जल निकला वह मसीह को दिखाती है, जो 'जीवित जल' देते हैं (यूह. ४:१०,१४; ७:३८,३९; १९:३४)। पुराना नियम यह कहीं नहीं कहता कि सचमुच का पत्थर रेगिस्तान में इस्राएलियों की यात्रा के समय चलता था। हालांकि यह भी असंभव नहीं समझा जाना चाहिये कि चट्टान में से पानी निकलकर उनके लिये एक रास्ता बनाया गया और उनके

५ चलती थी। वह चट्टान मसीह यीशु थे। परन्तु परमेश्वर उनमें से अधिकांश लोगों से प्रसन्न न हुए, इसलिए वे लोग जंगल
६ में मर गए। ये बातें हमारे लिए उदाहरण ठहरीं, कि जैसे उन्होंने लालच किया, वैसे हम बुरी वस्तुओ का लालच न करें।
७ तुम मूरतों की पूजा करनेवाले न बनो, जैसे कि उनमें से कई बन गए थे। वचन में लिखा है कि लोग खाने-पीने बैठे, और
८,९ नाचने-कूदने लगे। हम व्यभिचार न करें, जैसा उनमें से कईयों ने किया; और एक दिन ही में तेईस हजार मर गये। हमें
१० प्रभु को परखना नहीं चाहिए जैसा उनमें से कई लोगों ने किया, और सांपों के द्वारा नाश किए गए। तुम न कुड़कुड़ाओ,
११ जिस तरह से उनमें से कितने कुडकुड़ाए, और नाश करनेवाले के द्वारा नाश किए गए। परन्तु ये सब बातें, जो उनके साथ
१२ हुईं, उदाहरण के रूप में थीं; वे हमारे लिए जो जगत के अन्तिम समय में रहते हैं, चेतावनी के रूप में लिखी गईं हैं। इसलिए

पीछे चलने लगा - भजन १०५:४१। किंतु मसीह स्वयं उनके साथ गए और जो उनकी आवश्यकता थी वह उन्होंने पूरी की। पौलुस कहता है कि जो चट्टान उनके साथ थी और उनकी ज़रूरतों पूरा करती थी वह मसीह थे।

पुराने नियम (ओल्ड टेस्टामेंट) में चट्टान सच्चे यहोवा परमेश्वर को दिखाती है (व्यवस्था विवरण ३२:४ की टिप्पणी)। इस प्रकार पौलुस कहता है कि मसीह यहोवा हैं। (पद ९ भी देखें, उत्प. १६:७; निर्ग. ३:२; ३२:३४; यूह. ८:२४,५८; १२:४१; लूका २:११ देखें)।

१०:५ - परमेश्वर की दया का अनुभव करने के बावजूद, परमेश्वर के लोगों के रूप में बड़ी आशीषों को पा लेने के बावजूद, उनमें से अधिकांश लोग कनान कभी पहुंचे ही नहीं। वे लोग प्रतिफल के योग्य न ठहरे (९:२७)। उन पर परमेश्वर का दण्ड आया और मरने तक वे बिना किसी लक्ष्य के जंगल में भटकते रहे।

१०:६-१० - उनके असफल होने और मरने के अनेक कारण थे। पौलुस पांच प्रकार के पापों के विषय में बताता है जिनके वे दोषी थे। यह कि उन्होंने अपना मन बुरी बातों, जैसे, मूर्तिपूजा, अनैतिक कार्य, परमेश्वर को परखना और कुड़कुड़ाना आदि बातों में लगाया था। ये वे सामान्य पाप हैं जिनसे मसीहियों को बचना चाहिये। यदि हम उनसे बचते नहीं तो क्या हम अपेक्षा करें, कि हमारा अंत उनसे अच्छा होगा?

१०:६ - उनका प्रभु की ओर ध्यान लगाने के बजाए बुरी बातों की ओर अपना मन लगाना ही दूसरे सभी पापों का कारण है। एक और स्थान पर पौलुस विश्वासियों से कहता है कि वे अपनी बुरी इच्छाओं को मार डालें (कुलु. ३:५)। यदि हम उन्हें अपने जीवन में रहने देंगे तो अंत में वे विष वाले सांपों की तरह हमें डस लेंगे।

१०:७ - भजन ३२:६, इसके पश्चात् इस्राएल बार-बार मूर्तिपूजा में गिरा। परमेश्वर अपने वचन में सभी जगह मूर्तिपूजा को गलत कहते हैं (पद १८, निर्ग. २०:३,४ आदि)।

१०:८ - गिनती. २५:१-९। गिनती की पुस्तक कहती है कि परमेश्वर द्वारा भेजी मरी के द्वारा एक दिन में २४,००० लोग मर गए। पौलुस कहता है कि एक दिन में २३,००० मर गए। बाद में शेष १,००० भी मर गए। परमेश्वर व्यभिचार से घृणा करते हैं और स्पष्ट शब्दों में उसे करने की मनाही करते हैं (निर्ग. २०:१४ देखें)।

१०:९ - गिनती २१:४-९। यह दूसरा एक गंभीर पाप है जो मसीही लोगों में एक आम बात है।

१०:१० - गिनती १४:१-४,३७; १६:४१-४९। नाश करने वाला स्वर्गदूत उन पर महामारी लाया था। अपने जीवन के संबंध में कुड़कुड़ाना मसीही लोगों के बीच पाया जाने वाला सामान्य पाप है। परमेश्वर इसे गंभीर समझते हैं।

१०:११ - *"उदाहरण"* - परमेश्वर चाहते हैं कि हम देखें कि अपने लोगों के जीवन में पायी जाने वाली जिस बात से परमेश्वर घृणा करते थे, अभी भी वह उससे घृणा करते हैं। जिस प्रकार से रात के बाद सुबह आती है, उसी प्रकार पाप के पश्चात् दण्ड आता है।

"अंतिम समय" - इब्रा. ९:२६। मसीह के आने से पुराना युग समाप्त हुआ और एक नए युग का आरंभ हुआ। पुराने युग से हमें शिक्षा लेनी चाहिये।

१०:१२ - दूसरे शब्दों में, स्वयं पर भरोसा हानिकारक हो सकता है। चाहे हमें जितने लाभ हों और परिस्थितियां अनुकूल हों, चाहे

१३ जो समझता है कि मैं स्थिर हूं, वह सावधान रहे कि कहीं गिर न पड़े। तुम किसी ऐसी परीक्षा में नहीं पड़े, जो मनुष्य के
सहने से बाहर है; और परमेश्वर सच्चे हैं, वह तुम्हें सामर्थ से बाहर परीक्षा में न पड़ने देंगे, किन्तु परीक्षा के साथ हल भी
१४,१५ निकालेंगे कि तुम सह सको। इस कारण, हे मेरे प्यारो, मूर्तिपूजा से बचे रहो। मैं बुद्धिमान जानकर तुमसे कहता हूं कि मेरी
१६ बातों को तुम परखो। वह धन्यवाद का प्याला, जिस पर हम धन्यवाद करते हैं, क्या मसीह के लोहू की सहभागिता नहीं?
१७ वह रोटी जिसे हम तोड़ते हैं, क्या वह मसीह की देह की सहभागिता नहीं? इसलिए कि एक ही रोटी है, हम भी बहुत होते
१८ हुए भी एक देह हैं; क्योंकि हम सब उसी एक रोटी में हिस्सा लेते हैं। इस्राएलियों और उनके रीति रिवाज़ों को देखो! क्या
१९ बलिदानों के खानेवाले वेदी के सहभागी नहीं हैं? फिर मैं क्या कहता हूं? क्या यह कि मूरत को चढ़ाया हुआ प्रसाद कुछ मायने

हमें कितना ही ज्ञान क्यों न हो और कितना ही अनुभव क्यों न हो, हम फिर भी भंयकर दुष्टता में गिर सकते हैं। हमें अपनी निर्बलता को मान लेना चाहिये और मसीह में बल प्राप्त करना चाहिये। हमें पौलुस के नमूने को अपनाना चाहिये। ९:२७ देखें।

१०:१३ - जिस प्रकार अन्य लोगों के साथ होता है, परीक्षाएं किसी भी विश्वासी को पकड़ सकती हैं। परंतु मसीहियों के लिये प्रतिज्ञा है, जो दूसरे लोगों के लिये नहीं हैं। वह एक बड़ी प्रतिज्ञा है। परमेश्वर किसी भी प्रलोभन को इतना सामर्थी, इतना आकर्षक नहीं होने देंगे, कि विश्वासी सामना न कर सकें। वह सदैव एक रास्ता निकालेंगे। वह पूर्ण रीति से विश्वासयोग्य हैं। हमें भी वैसा होना चाहिये। जिस परीक्षा में हम पड़े हैं, वह यदि हमारे लिए लुभावना है तो हम उसमें गिरने के खतरे में होते हैं। जब हम गिर जाते हैं, हमें परीक्षा के लिये परमेश्वर पर दोष नहीं लगाना चाहिये कि उन्होंने हमारे जीवन में ऐसी परीक्षा को आने की अनुमति दी जिसका सामना हम कर न सके।। मत्ती ६:१३ भी देखें।

१०:१४-२२ - पौलुस प्रभु भोज और मूर्तियों के आगे किए जाने वाले भोज के विषय बात करता है। जो लोग पहले भोज में शामिल होते हैं उन्हें दूसरे से दूर रहना चाहिये। ६:१८ से तुलना करें। मूर्ति के सामने के खाने या मंदिर में मूर्ति के साम्हने रखे गए खाने में सम्मिलित होना मूर्तिपूजा करना है। इसका अर्थ है, दुष्टात्माओं के साथ साठगांठ।

१०:१४ - पद ७; १ यूह. ५:२१। कुछ ऐसी बातें हैं, जिनसे विश्वासियों को जितना संभव हो, दूर भागना चाहिये। तुलना करें ६:१८।

१०:१६ - इस पद का अर्थ हमें मत्ती २६:२६-२८ के प्रकाश में लगाना चाहिये। यूह. ६:५३-५८, ६३ से भी तुलना करें। सहभागिता का अर्थ वास्तव में मसीह की देह को खाना और रक्त को पीना नहीं है। इसका अर्थ है आत्मिक रीति से मिलकर भाग लेना। हम रोटी और दाखरस लेते हैं, किंतु मसीह के साथ आत्मा में हमारी संगति होती है। रोटी और दाखरस विश्वासियों के प्रभु के साथ के संबंध को दिखाते हैं। तुलना करें पद १८। जो लोग इसमें विश्वास से भाग लेते हैं उनके लिये यह उसकी मृत्यु की याद है जो उन्होंने उनके लिए सही। प्रभु भोज मसीह की सहभागिता का एक जश्न है जो हमारे लिये 'मरे' थे। क्योंकि उन्होंने हमें छुड़ाया था, इसलिये यह उनके प्रति धन्यवाद की सेवा है।

१०:१७ - प्रभु भोज में एक रोटी का उपयोग होता था। जब विश्वासी रोटी में भाग लेते थे, तब वे दर्शाते थे कि वे एक शरीर के रूप में एक हैं (१२:१२,१३)।

१०:१८ - लैव्य व्यवस्था ७:१५; ८:३१; व्यवस्था विवरण १२:१८। चढ़ाई हुई वस्तुओं में से खाना वेदी के ऊपर रखी वस्तुओं को उपयोग करना है। ये शब्द इस बात को स्पष्ट करते हैं कि मसीह की देह और लोहू में भाग लेने का क्या अर्थ है - पद १६। वेदी पर से खाने का अर्थ यथार्थ में वेदी पर से खाना नहीं है। यह वेदी और उस पर चढ़ायी गई वस्तुओं के बीच निकट संबंध को दिखाता है। यह दूसरों के साथ इस संगति को दिखाता है जिन्होंने इसमें भाग लिया था और जो कुछ ये वेदी दिखाती है।

१०:१९-२१ - पौलुस ने जब उदाहरण दिए तब वह इस बात को पद १६-१८ में स्पष्ट करना चाह रहा था। मसीह में शामिल होना उन सभी के साथ संगति को दिखाता है जो ऐसा करते हैं और उस सत्य को स्वीकार करना जो मसीह का बलिदान दिखाता है। इसी प्रकार मूर्ति के मंदिर के सामने एक भोज में भाग लेना एक झूठी आराधना में सम्मिलित होना है। यह दुष्टात्माओं के साथ संगति करना है।

२० रखता है, या मूरत कुछ मायने रखती है? नहीं, बल्कि यह कि गैरयहूदी जो बलिदान करते हैं, वे परमेश्वर के लिए नहीं,
२१ परन्तु दुष्टात्माओं को अर्पण करते हैं। मैं नहीं चाहता कि तुम दुष्टात्माओं के साथ हिस्सेदार हो। तुम प्रभु के प्याले, और
दुष्टात्माओं के प्याले दोनों में से नहीं पी सकते! तुम प्रभु की मेज़ और दुष्टात्माओं की मेज़ दोनों के साझी नहीं हो सकते।
२२,२३क्या हम प्रभु को क्रोध नहीं दिलाते हैं? क्या हम उनसे शक्तिमान हैं? सब वस्तुएं मेरे लिए उचित् तो हैं, परन्तु सब लाभ
२४ की नहीं। सब वस्तुएं मेरे लिए जायज़ तो हैं, परन्तु सब वस्तुओं से तरक्की नहीं। कोई अपनी ही भलाई को न ढूंढ़े, बल्कि
२५,२६दूसरों के फायदे की भी सोचो। जो कुछ कसाइयों के यहां बिकता है, वह खाओ और विवेक के कारण कुछ न पूछो, क्योंकि
२७ पृथ्वी और उसकी भरपूरी प्रभु की है। यदि अविश्वासियों में से कोई तुम्हें नेवता दे, और तुम जाना चाहो, तो जो कुछ तुम्हारे
२८ सामने रखा जाए, वही खाओ, और विवेक के कारण कुछ न पूछो। परन्तु यदि कोई तुमसे कहे, यह तो प्रसाद है, तो उस
२९ बतानेवाले के कारण, और विवेक के कारण न खाओ। मेरा मतलब, तुम्हारा विवेक नहीं, परन्तु बताने वाले का। भला,
३० मेरी आज़ादी दूसरे के विचार से क्यों परखी जाए। यदि मैं धन्यवाद करके साझी होता हूं, तो जिस बात के लिए मैं धन्यवाद

१०:१९ - ८:४ देखें।

१०:२० - मूरतें अपने आप में कुछ नहीं है। परंतु मूर्तियों के पीछे दुष्टात्माएं हैं (वे ८:५ के झूठे देवता और प्रभु हैं)। वे, जो उनकी उपासना करते हैं या नहीं करते हैं, सोचते हैं कि परमेश्वर को दान दे रहे हैं, किंतु ऐसा नहीं है। इस संसार में बहुत से लोगों की आराधना के बारे में यह एक बहुत महत्वपूर्ण कथन है। व्यवस्था. ३२:१७ भी देखें। मूर्ति के साम्हने चढ़ायी वस्तुओं को खाना उनके पीछे की दुष्टात्माओं के साथ एक होना है। यह उनको दी गई उपासना के साथ सहमति दिखाना है।

१०:२१ - *"प्रभु की मेज़"* - प्रभु भोज को दिखाता है। वहाँ वह नेवता देनेवाला है, और उसमें भाग लेने वाले विश्वासी मेहमान हैं। दुष्टात्माओं की मेज का अर्थ है 'मूर्तियों का भोज'। दुष्टात्माएं नेवता देनेवाली हैं और उसमें भाग लेने वाले मेहमान। इस भाषा का उपयोग करके पौलुस दिखाना चाहता है कि विश्वासियों के लिये यह कितना कठिन है कि इन दोनों को एक करें, या सोचें कि "मूर्ति-भोज" में भाग लेने से कुछ नहीं होता है।

१०:२२ - निर्ग. २०:५; व्यवस्था. ३२:२१; भजन ७८:५८। क्या हम यह सोचने का साहस कर सकते हैं कि वह करना चाहें जिसे परमेश्वर मना करते हैं या उस समय खड़ा रहना चाहें, जब उनका क्रोध भड़कता है?

१०:२३ - ६:१२ देखें।

१०:२४ - वह इस महत्वपूर्ण सिद्धांत की ओर लौटता है - ६:६,१३; ८:१; रोमि. १४:१९; १५:१-३; यूह. १३:३४ देखें।

१०:२५ - जो मांस उन दिनों बाजार में बिका करता था *उसमें से अधिक,* पहले मूर्ति के साम्हने चढ़ाया जाता था। किंतु क्योंकि वह बाज़ार में बिकता था, घर लाकर खाया जा सकता था।

१०:२६ - भजन २४:१। मूर्ति के साम्हने चढ़ाया गया मांस जो बाज़ार में बिकता था, परमेश्वर का बनाया हुआ है और परमेश्वर का है, इसलिये उसे खाया जा सकता है।

१०:२७ - यह घर के भोज की ओर संकेत है, मंदिर में दिए जाने वाले भाग की ओर नहीं। पौलुस ने यह पहले ही कह दिया था कि मंदिर के भोज में मसीह के विश्वासियों को भाग नहीं लेना चाहिये (पद २०,२१)।

१०:२८ - ऐसी स्थिति में जो विश्वासी ऐसा करता है, वह यह इशारा करता है कि मूर्तिपूजा कोई महत्व नहीं रखती है, और उसे यह कभी नहीं करनी चाहिये। वहां उपस्थित किसी भी विश्वासी के विवेक को ठोकर पहुंचाएगा जो यह सोचता है कि मूर्ति के साम्हने चढ़ाया गए मांस को कहीं भी खाना अनुचित है (८:७)।

१०:२९,३० - जो व्यक्ति यह सोचता है कि किसी भी परिस्थिति में या किसी भी स्थान में मूर्ति के साम्हने रखे गए मांस को नहीं खाना चाहिये, वह उस विश्वासी को दोषी ठहराएगा जिसे यह निश्चय है कि उसे कुछ भी खाने की आज़ादी है। पौलुस कहता है कि यदि ऐसा है तो भला यह है कि ऐसी आज़ादी का उपयोग न किया जाए।

३१ करता हूं, उसके कारण मेरी बदनामी क्यों होती है? इसलिए तुम चाहे खाओ, चाहे पिओ, चाहे जो कुछ करो, सब कुछ
३२ परमेश्वर को आदर देने के लिए करो। तुम न यहूदियों, न यूनानियों, और न परमेश्वर की कलीसिया के लिए ठोकर
३३ के कारण बनो, जैसा मैं भी सब बातों में सब को खुश रखता हूं, और अपना नहीं, परन्तु बहुतों का लाभ ढूंढ़ता हूं, ताकि
वे मुक्ति पाएं।

११ तुम मेरे समान जीवन जिओ, जैसा मैं मसीह की तरह जीवन जी रहा हूं। हे भाइयो और बहनो, मैं तुम्हें सराहता हूं कि सब बातों
३ में तुम मुझे स्मरण करते हो, और जो सच्चाई और तौर-तरीके मैंने तुम्हे सौंप दिए हैं, उन्हें अपनाते हो। इसलिए मैं चाहता हूं कि
४ तुम जान लो, कि हर एक पुरुष का सिर मसीह हैं, और स्त्री का सिर पुरुष है, और मसीह का सिर परमेश्वर हैं। जो पुरुष

१०:३१ - पौलुस एक सिद्धांत देता है जिससे विश्वासी के प्रत्येक कार्य को दिशा मिलनी चाहिये। यहां पर सर्वोच्च संभव उद्देश्य को बताया गया है। यदि सभी विश्वासी इस सिद्धांत के अनुसार जिएं तो कलीसिया में पार्टीबाजी और फूट नहीं होगी; दूसरों पर दोष लगाना, अनैतिकता, बिना विचार किए कोई कार्य करना, जिससे दूसरों को चोट लगे, आदि भी नहीं किया जाएगा। यदि हमारे जीवन के प्रत्येक कार्य को हम इस पद के आधार पर मापें, तो जिन बातों को हम हानि रहित समझते थे, हम नहीं करेंगे।

१०:३२ - ८:९,१३; रोमि. १४:१३,२०,२१ देखें। यदि हम पद ३१ के अनुसार जिएं, तो हम इसे भी पूरा करेंगे।
"कलीसिया" - मत्ती १६:१८ पर नोट्स देखें।

१०:३३ - ९:१९-२३; २ तीमु. २:१० देखें। वह उनके सामने ऐसे जीवन के मार्ग को नहीं रख रहा था, जिसे वह स्वयं नहीं अपनाना चाहता था। स्वार्थी और स्वकेन्द्रित लोग ऐसे जीवन को पसंद नहीं करते। किंतु यह सर्वोत्तम जीवन है और हृदय की शांति और परमेश्वर में आनंद एवं अनंत पुरूस्कार की ओर ले जाता है।

अध्याय ११

११:१ - ४:१६ देखें। फिलि. ३:१७; १ थिस्स. १:६। यहां पौलुस इस बात का कारण देता है कि उसके नमूने को क्यों अपनाना चाहिये - प्रभु यीशु के समान जीवन जीने के लिए परमेश्वर ने उसे योग्य बनाया। सच पूछें तो उसमें प्रभु यीशु जीवित रहकर कार्य कर रहे थे (गल. २:२०)। वही एक मार्ग हैं जिनके द्वारा वह या और कोई पौलुस के आदर्श जीवन को अपना सकता है।

११:२ - यह मसीही विश्वास के संबंध में वह शिक्षा थी, जिसे प्रेरितों ने सिखाया था। अब पौलुस सार्वजनिक आराधना की ओर हमारा ध्यान करता है और सिखाता है कि हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिये। १४ अध्याय के अंतिम भाग तक वह इस विषय पर शिक्षा जारी रखता है।

११:३ - *"सिर"* - इसका अर्थ है अधिकार पद पर आसीन व्यक्ति या अधिकारी। पुरुष को मसीह की आधीनता में रहना चाहिये। पत्नी को अपने पति के प्रति (इफि. ५:२४; १ तीमु. २:११,१२; १ पत. ३:१,५,६)। पत्नी के द्वारा पति के अधिकार की उतार कर फेंकना परमेश्वर के शासन के विरोध में खड़ा होना है। इसके दुष्परिणाम होंगे। यहां पर पौलुस यह नहीं सिखा रहा है कि पति अपना अधिकार कैसे उपयोग करें, किंतु इफि. ५:२५,२८,३३ में ऐसा करता है। जब वह कहता है कि प्रभु यीशु के ऊपर परमेश्वर है, इसका अर्थ यह नहीं है कि दोनों के स्वभाव एक से नहीं है। पति के आधीन रहने वाली पत्नी और पति दोनों ही का स्वभाव एक सा है। पौलुस वही सिखाता है जो मसीह ने सिखाया (यूह. १४:२८; ५:१९-२३)।

११:४-१० - पौलुस सार्वजनिक आराधना के विषय में कहता है। ऐसे समय में सारी बातें सभ्यता के साथ और क्रमानुसार होनी चाहिए। पुरुषों के लिए क्या उचित है और स्त्रियों के लिए क्या उचित है इसमें पौलुस भेद करता है। वह इन भेदों को उस समय की प्रथाओं पर आधारित नहीं करता, परंतु पुरुष और स्त्रियों के आपसी सम्बन्धों के आधार पर करता है जिन्हें स्वयं परमेश्वर ने प्रगट किया है (पद ३:७-९)।

५ सिर ढांके हुए प्रार्थना या भविष्यद्वाणी करता है, वह अपने सिर का अपमान करता है। परन्तु जो स्त्री बिना सिर ढांके प्रार्थना
६ या भविष्यद्वाणी करती है, वह अपने पति का अपमान करती है, क्योंकि वह मुण्डी होने के बराबर है। यदि स्त्री ओढ़नी
७ न ओढ़े, तो बाल भी कटा ले। यदि स्त्री के लिए बाल कटाना या मुण्डाना लज्जा की बात है, तो ओढ़नी ओढ़े। हां, पुरुष
को अपना सिर ढांकना उचित नहीं, क्योंकि वह परमेश्वर के स्वरूप और अधिकार का प्रतिनिधि है; परन्तु स्त्री पुरुष
८,९ के अधिकार की प्रतिनिधि है! क्योंकि पुरुष स्त्री से नहीं हुआ, परन्तु स्त्री पुरुष से हुई है। पुरुष स्त्री के लिए नहीं सिरजा

११:४ - कुछ लोग सोचते हैं कि इस पद ३ में दूसरी बार इस्तेमाल हुआ शब्द 'सिर' मसीह की ओर संकेत करता है। इसका अर्थ है कि पौलुस ने इस शब्द को दो प्रकार से उपयोग किया है, ऐसा नहीं हो सकता है। एक सिर के अनादर का अर्थ उसके स्वयं का अपमान है।

११:५,६ - क्या यह ठीक है कि सार्वजनिक आराधना में स्त्री प्रार्थना करे या भविष्यद्वाणी करे, जब पुरुष और स्त्री दोनों उपस्थित हैं? पौलुस इस प्रश्न को यहां नहीं उठाता है। पद १४:३४ में वह कहता है "कि स्त्रियां कलीसिया में शांत रहें"। यहां पर विषय भविष्यद्वाणी है, प्रार्थना नहीं। वह यह नहीं कहता है कि आराधना की सार्वजनिक सभा में स्त्री को प्रार्थना नहीं करनी चाहिये। हम उस समय की कलीसिया में ऐसी स्त्रियों को देखते हैं जिनके पास भविष्यद्वाणी का वरदान था - प्रे. काम २:१८; २१:९। ऐसा लगता है कि पौलुस ने सिखाया था कि उन्हें सार्वजनिक सभाओं में जहां स्त्री और पुरुष दोनों उपस्थित होते हैं, यह वरदान इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिये, किंतु दूसरे समयों में (१४:३४,३५; १ तीमु. २:११,१२) वे ऐसा कर सकते हैं।

यहां ५ वें पद में पौलुस ऐसा कहता है कि यदि स्त्री प्रार्थना करती है (सार्वजनिक रीति से जब पुरुष उपस्थित हैं) या भविष्यद्वाणी करती है (किसी और समय), उसको अपना सिर ढंकना चाहिये। स्त्री के लिये अपना सिर मुण्डाना, लज्जा की बात थी। इसी प्रकार से बिना सिर ढके प्रार्थना करना और भविष्यद्वाणी करना भी। वह यह नहीं कहता कि जब प्रार्थना या भविष्यद्वाणी कर रही है, तब भी उसे सिर ढांकना चाहिये।

कुछ लोग कह सकते हैं कि सिर पर ओढ़ना (छोटे या बड़े बाल - पद १४,१५) मात्र संकेत है और आवश्यक नहीं है। यह सत्य है कि वे प्रतीक मात्र हैं, किंतु परमेश्वर द्वारा निर्धारित प्रतीकों का महत्व है और जो प्रतीकों से किनारा करना चाहते हैं, वे यह भी दिखाना चाहते हैं कि प्रतीक जिस सच्चाई को दिखाते हैं, उसकी परवाह उन्हें नहीं है। कोई यह कह सकता है कि क्या यह एक छोटी बात नहीं है? यदि ऐसा होता है, तो क्या हुआ? जिन बातों को विश्वासी छोटी बात समझते हैं, उनमें उन्हें अपने आपको प्रसन्न करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये (१०:२९,३३; ११:१)। लेकिन क्या मसीहियों को स्वतंत्रता नहीं है? उन्हें आज़ादी है। जो उचित है उसे करने के लिये उन्हें अपनी आज़ादी का इस्तेमाल करना चाहिये, अनुचित बातों को करने के लिये नहीं।

११:७-१० - स्थानीय रीति-रिवाज़ के आधार पर वह यह नहीं कहता कि क्या आदरणीय है, क्या अनादरणीय। वह इस आधार पर अपने विचारों को रखता है, कि पुरुष और स्त्री के बनाने में परमेश्वर का उद्देश्य क्या था वह पहले स्त्री और पुरुष की उत्पत्ति के विषय कहता है (उत्प. १ और २)।

११:७ - सार्वजनिक आराधना में एक पुरुष को अपना सिर क्यों नही ढंकना चाहिये? इसका कारण यहां दिया गया है। स्त्री के अलावा पृथ्वी की प्रत्येक वस्तु के ऊपर परमेश्वर ने उसको जो अधिकार दिया है, उसका चिन्ह है, पुरुष का सिर को न ओढ़ना। इस तरह से मनुष्य परमेश्वर की महिमा को दिखाता है जो सभी के ऊपर शासक हैं। पौलुस कहता है, स्त्रियों को अपना सिर ढांकना चाहिये क्योंकि इस बात का चिन्ह है कि वे परमेश्वर द्वारा पुरुष को दिए गए अधिकार के प्रति अधीन हैं। पुरुष के अधिकार के प्रति स्त्री की आधीनता पुरुष को सम्मान और आदर दिए जाने को दिखाती है।

११:८,९ - उत्प. २:२०-२३ देखें। वह कह रहा है कि परमेश्वर ने पुरुष को पहले बनाया, यह दिखाने के लिये कि स्त्री उसके आधीन है। स्त्री पुरुष के लिये थी, न कि पुरुष स्त्री के लिये।

१० गया, परन्तु स्त्री पुरुष के लिए सिरजी गई है। इसीलिए स्वर्गदूतों के कारण स्त्री को यह उचित है कि अधिकार अपने सिर
११,१२ पर रखे। तौभी प्रभु में न तो स्त्री बिना पुरुष, और न पुरुष बिना स्त्री के है। क्योंकि जैसे स्त्री पुरुष से है, वैसे ही पुरुष
१३ स्त्री के द्वारा है; परन्तु सब वस्तुएं परमेश्वर से हैं। तुम स्वयं ही विचार करो, क्या स्त्री को बिना सिर ढांके परमेश्वर से
१४ प्रार्थना करना शोभा देता है? क्या स्वाभाविक रीति से भी तुम नहीं जानते, कि यदि पुरुष लम्बे बाल रखे, तो उसके लिए
१५ अपमान है? परन्तु यदि स्त्री लम्बे बाल रखे, तो उसके लिए शोभा है क्योंकि बाल उसको ओढ़नी के लिए दिए गए
१६,१७ हैं। परंतु यदि कोई बहस करना चाहे, तो यह जान ले कि न हमारा और कलीसियाओं का ऐसा रिवाज़ है। परन्तु यह
१८ आज्ञा देते हुए, मैं तुम्हें नहीं सराहता, इसलिए कि तुम्हारे इकट्ठे होने से भलाई नहीं, परन्तु हानि होती है। क्योंकि पहले
तो मैं यह सुनता हूं, कि जब तुम कलीसिया में इकट्ठे होते हो, तो तुममें फूट होती है। और मैं कुछ कुछ इस बात को मानता
१९,२० भी हूं। क्योंकि शिक्षा सिद्धान्तों में भिन्नता भी तुममें अवश्य होंगी, इसलिए कि जो लोग तुममें खरे निकले हैं, वे प्रगट हो जाएं।

११:१० - यहाँ स्त्रियों के सिर ढांकने का एक और कारण है, जब वे प्रार्थना या भविष्यद्वाणी करती हैं। इसका सम्बंध भी कुरिंथ के रीति-रिवाज़ों से नहीं है। विश्वासियों की सभाओं में स्वर्गदूत देखते रहते हैं कि क्या उचित है, क्या नहीं। मसीही स्त्रियों को इस प्रकार का व्यवहार नहीं करना चाहिये, जिससे परमेश्वर द्वारा भेजे गए इन संदेशवाहकों को किसी प्रकार से बुरा लगे (इब्रा. १:१४)।

११:११,१२ - पौलुस नहीं चाहता था कि उसके पाठक यह समझें, कि वह पुरुषों को सब बातों में ऊपर उठा रहा है और स्त्रियों को कम समझ रहा है। अधिकार के सम्बंध में पुरुष सिर है, किंतु अन्य सभी बातों में वे एक दूसरे पर निर्भर हैं। यह परमेश्वर ने निर्धारित किया है कि पति और पत्नी एक इकाई के के रूप में कार्य करें।

११:१३ - पौलुस सोचता है कि यह बात इतनी साफ है कि विश्वासियों को चाहिये कि बिना किसी निर्देश को पाए वे इस सत्य को देख सकें।

११:१४,१५ - पौलुस कहता है कि पुरुष के लिए लम्बे बाल रखना लज्जा की बात है, किंतु स्त्री के लिये उसकी इज़्ज़त की। बिना उसके कहे, उन्हें यह बात जाननी चाहिये। आज जब पश्चिम देशों में स्त्रियां अपने बाल काट लेती हैं, वे अपनी महिमा को काट डालती हैं और बहुत से पुरुष अपनी बेईज़्ज़ती (लम्बे बाल) के विषय में घमण्ड करते हैं। पौलुस बालों की लम्बाई के विषय में कुछ नहीं कहता है, किंतु स्पष्ट करता है कि स्त्रियों के बाल पुरुषों के बालों से लम्बे होने चाहिये। पद १५ में ओढ़नी का अर्थ वह नहीं जो पद ५ और ६ में है।

११:१६ - पौलुस को मालूम था कि कुछ लोग उसकी बातों का विरोध करेंगे। वह तर्क वितर्क के लिये तैयार नहीं था। यह अपने आप में पर्याप्त था कि उसने सत्य को प्रस्तुत किया - उसके समय में लोगों ने इस सत्य को अपनाया भी।

११:१७ - पद २२,३४।

११:१८ - १:१०-१२; ३:३,४ देखें। ऐसा लगता है कि उनके आपसी झगड़े उनके घर तक ही सीमित नहीं थे, किंतु वे उन्हें कलीसिया तक ले आए थे।

११:१९ - *"शिक्षा-सिद्धान्तों में भिन्नता"* - अजीब लग सकता है, किंतु उनके बीच के झगड़े किसी उद्देश्य को पूरा कर रहे थे।

"खरे निकले" - यूनानी शब्द का अर्थ है किसी परख या परीक्षा में से होकर जाना। ऐसा लगता है कि परमेश्वर झगड़े, पार्टीबाजी, गलत शिक्षा और मसीहियों में मतभेद को किसी अच्छे कारण की वजह से होने देते हैं। ऐसी बातें एक परख हैं। परमेश्वर के अनुमोदन के योग्य हैं। ये बातें दिखाती हैं कि कौन आत्मिक है, परमेश्वर के मार्गों के प्रति विश्वासयोग्य हैं। उन सिद्धांतों को लागू करने के लिये कौन तैयार है जिन्हें पौलुस ने दिया है। बिना परखे जाने से उसमें उत्तीर्ण होने का प्रश्न नहीं है और यदि कोई है तो उसके पास होने पर, उसका प्रगट होना भी आवश्यक है।

११:२०-२२ - वे कहते थे कि प्रभु भोज में भागी हो रहे हैं। किंतु उन्होंने इस व्यवहार के प्रति इतना बुरा रवैया रखा कि पौलुस उसे प्रभु भोज कहने के लिये भी तैयार नहीं था। उन दिनों में कुछ मण्डलियां प्रभु भोज के साथ प्रीति भोज भी किया करती

२०,२१ इसलिए तुम जो एक जगह में इकट्ठे होते हो तो यह मात्र प्रभु भोज खाने के लिए नहीं। क्योंकि खाने के समय कई लोग दूसरे
२२ से पहले अपना भोज खा लेते हैं, इसलिए कोई तो भूखा रहता है, और कोई मतवाला हो जाता है। क्या खाने पीने के लिए तुम्हारे घर
नहीं? या परमेश्वर की कलीसिया को तुच्छ जानते हो, और जिन के पास नहीं है उन्हें लज्जित करते हो? मैं तुमसे क्या कहूं?
२३ मैं प्रशंसा नहीं करता। क्योंकि यह बात मुझे प्रभु से पहुंची, और मैंने तुम्हें भी पहुंचा दी, कि प्रभु यीशु ने जिस रात वह पकड़वाए
२४ गए रोटी ली, और धन्यवाद करके तोड़ी, और कहा, "यह मेरी देह है, जो तुम्हारे लिए है; मेरे स्मरण के लिए यही
२५ किया करो।" इसी तरह उन्होंने रोटी के बाद प्याला भी लिया, और कहा, "यह प्याला मेरे लोहू में नई वाचा है; जब
२६ कभी पीओ, तो मेरे स्मरण के लिए यही किया करो।" क्योंकि जब कभी तुम यह रोटी खाते, और इस प्याले में से पीते
२७ हो, तो प्रभु की मृत्यु को जब तक वह न आए, प्रचार करते हो। इसलिए जो कोई अनुचित रीति से प्रभु की रोटी खाए,

---

थीं। उद्देश्य यह था कि एक दूसरे के प्रति प्रेम प्रगट किया जाए, इसे प्रीति भोज कहा जाता था (यहूदा १२)। किंतु कुरिंथ में ऐसा नहीं था, वे एक दूसरे के बारे में सोचने के बजाए अपने और अपने झुण्ड के बारे में ही सोचा करते थे। कलीसिया में उनका व्यवहार मण्डली की बेईज़्ज़ती करने के समान था (२२)। वे यह भूल चुके थे कि प्रभु भोज का अर्थ है मसीह के साथ एकता और एक दूसरे के साथ एक होना (१०:१६,१७)।

११:२३ - अब वह फिर से सिखाना चाहता है कि प्रभु भोज का अर्थ क्या है और इसे कैसे खाना चाहिये। एक बार उसने उन्हें यह सत्य पहुंचाया था, किंतु वे उससे दूर चले गए थे। जो कुछ उसने मसीह से प्राप्त किया था वह उसने उनको दे दिया था। सुसमाचार और उसमें समानता थी। मत्ती २६:२६-२८; मरकुस १४:२२-२४; लूका २२:१६-२२।

११:२४ - *"मेरी देह"* - प्रभु भोज में रोटी (पद २८) मसीह की देह की ओर संकेत करती है। बाइबिल में संकेतों (प्रतीकों) के उपयोग के सम्बंध में यूह. ६:५३-५८,६३ पर नोट्स देखें।

"तुम्हारे लिए" - इसका अर्थ है मसीह ने विश्वासियों के लिये बलिदान के रूप में अपनी देह क्रूस पर दी।

"यही किया करो" - यह मसीह यीशु की गंभीर आज्ञा है। इसलिये प्रत्येक विश्वासी जो आज्ञाकारी होना चाहता है, प्रभु भोज में शामिल होता है।

"मेरे स्मरण के लिए" - प्रभु भोज के समय हमें ऊपर देखना है और पीछे मुड़ कर भी (भीतर भी पद २८)। हमारा ध्यान ऊपर मसीह पर और बहुत पहले अपनी मृत्यु में जो उन्होंने हमारे लिये किया, उस पर मनन करना है।

११:२५ - प्याले में दाखरस था (मत्ती २६:२८) जो प्रभु यीशु मसीह के लोहू की ओर संकेत करता है। यह नई वाचा को स्थापित करने के लिये बहाया गया था। (नोट्स देखें)। इन शब्दों पर ध्यान दें, "यह प्याला नई वाचा है।" यह सत्य था, कि प्याला वास्तव में नई वाचा नहीं था, किंतु यह मसीह के रक्त में नई वाचा का एक प्रतीक था। इसी प्रकार हमें पद २४ को भी समझना है कि रोटी भी प्रभु यीशु मसीह की देह को दिखाती है। यह वास्तव में उनकी देह नहीं थी। यहां देखें कि पौलुस उन्हें प्याले में से पीने और रोटी खाने के विषय में बताता है। रोटी खाना और प्याले में से पीना ठीक से प्रभु भोज लेने में सम्मिलित है।

११:२६ - *"प्रचार करते हो"* - नए नियम में सुसमाचार के दिए जाने के लिये इस शब्द का उपयोग होता है। विश्वासियों का प्रभु भोज में शामिल होना सुसमाचार को शब्दों में नहीं, परंतु कार्य रूप में प्रगट करना है। इस उपदेश का विषय पापियों के लिये मसीह की मृत्यु है। यह परमेश्वर का उद्देश्य है, कि इस प्रकार का क्रिया रूप में संदेश, यीशु के दोबारा आने तक दिया जाए।

"जब कभी" - पौलुस कहीं पर यह नहीं बताता है कि विश्वासियों को कितनी बार प्रभु भोज लेना चाहिए।

११:२७ - यह गंभीर चेतावनी पौलुस किसको दे रहा है? 'अनुचित रीति से' का अर्थ क्या है? यह अपने आपको भाग लेने में अयोग्य समझना नहीं है। यह अपने भीतर अपराध दोष के साथ जीना नहीं है या इस जानकारी के साथ भी कि उसने बुरा किया है (यदि प्रभु भोज लेने से पहले उस अपराध को मानकर उसे छोड़ दिया गया है)। पद १८-२२ में अनुचित तरीके से लेने का एक उदाहरण है। लापरवाही के साथ इसमें शामिल होना, बिना सम्मान और बिना इसका अर्थ जाने और अपने जीवन में लागू किए भाग लेना, अनुचित रीति से भाग लेना है।

२८ या उसके कटोरे में से पीए, वह प्रभु की देह और लोहू का अपराधी ठहरेगा। इसलिए मनुष्य अपने आप को जांच ले और
२९ इसी रीति से इस रोटी में से खाए, और इस कटोरे में से पीए। क्योंकि जो खाते-पीते समय प्रभु की देह को नहीं पहचानता,
३० वह इस खाने और पीने से अपने ऊपर दण्ड लाता है। यही कारण है कि तुममें कई कमज़ोर और रोगी हैं, और बहुत से
३१,३२ मर भी गए। यदि हम अपने आप को परखते, तो दण्ड न पाते। परन्तु प्रभु हमें दण्ड देकर हमें सिखाना चाहते हैं, इसलिए
३३ कि हम संसार के साथ दोषी न ठहरें। इसलिए, हे मेरे भाइयो, जब तुम खाने के लिए इकट्ठे होते हो, तो एक दूसरे के लिए
३४ ठहरा करो। यदि कोई भूखा हो, तो अपने घर में भोजन खा ले जिससे तुम्हारा इकट्ठा होना दण्ड का कारण न हो। बाकी
बातों को मैं आने के बाद देखूंगा।

१२ हे भाइयो, बहनो, मैं नहीं चाहता कि तुम आत्मिक वरदानों के विषय में अज्ञान रहो। तुम जानते हो कि जब तुम अन्यजाति थे,

---

पाप में बने रहने के साथ ही इसमें भाग लेना भी अनुचित रीति से भाग लेना है। अनुचित रीति से भाग लेना मसीह के रक्त और देह के विरोध में अपराधी होना है। यह उनकी देह और रक्त के प्रतीक का अनादर करना है। यह उनकी देह और रक्त के विरोध में अपराध है और कोई छोटी बात नहीं है।

११:२८ - योग्य रीति से भाग लेने के लिए हृदय की तैयारी की भी आवश्यकता है। इसलिये विश्वासियों को चाहिये कि प्रभु भोज में भाग लेने से वे अपने बाहरी व्यवहार और भीतरी स्थिति को जांच लें। सब प्रकार का पाप, अनादर और विचारहीनता को त्यागे जाने की आवश्यकता है। प्रत्येक व्यक्ति को यह जान लेना चाहिये कि वह इसका अर्थ समझता है और तभी इसमें भाग ले।

११:२९ - *"दण्ड"* - यहां इसका अर्थ अनंत काल का दण्ड नहीं है। इसका अर्थ है परमेश्वर की अप्रसन्नता और उनको सुधारने के लिये दण्ड का हाथ, जैसा ३० पद में स्पष्ट है।

"देह को नहीं पहचानता" - इसके दो संभावित अर्थ हैं। इसका अर्थ प्रभु भोज के अर्थ को समझना हो सकता है। यह पहचान न पाना कि यह दूसरे अन्य भोज के समान नहीं है। कुरिंथ के लोग इसी गलती को कर रहे थे। इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि विश्वासी यह नहीं समझ रहे हैं कि सभी विश्वासी मिलकर मसीह की देह को बनाते हैं (१०:१७; १२:१२,१३)। अपने झगड़ों और पार्टीबाजी के कारण कुरिंथ के लोग इस बात में भी हार रहे थे।

११:३० - अपने ऊपर वे यह दण्ड ला रहे थे। उनकी सभाओं के कारण ऐसा कुछ नुकसान उन्हें हो रहा था (पद १७)। परमेश्वर चाहते हैं कि उनके लोग सही रीति से पेश आएं (१४:४०)। यदि वे ऐसा नहीं करेंगे तो जिस बात को प्रभु ने आशीष ठहराया है, वही दण्ड में बदल जाएगा।

"मर गए" - ५:५ और नोट्स देखें। यहां 'सो गए' का अर्थ है, इस संसार से चले गए (यूहन्ना ११:११-१४ के नोट्स देखें)।

११:३१ - पद २८। हमें अपना परीक्षण करना चाहिये। हमारे जीवन और व्यवहार में बुरा क्या है, उसे देखें और उसे छोड़ दें। तब परमेश्वर दण्ड देने के बजाए हमारा भला करेंगे।

११:३२ - इब्रा. १२:५-१३। इस पतित, पापी संसार के साथ हम दोषी न ठहराए जाएं, इसलिये परमेश्वर जिन बातों को हमारे जीवन में आने देते हैं उनका हमें स्वागत करना चाहिए। यूह. १५:१८,१९; रोमि. १२:२; याकूब ४:४; और १ यूह. २:१६ में संसार पर नोट्स देखें।

११:३३,३४ - पौलुस पद २९ में क्या कहना चाहता है, उसे समझने के लिये ये पद हमारी सहायता करते हैं। प्रभु भोज के उद्देश्य को और कलीसिया की एकता को समझने की आवश्यकता है।

अध्याय १२

१२:१ - यहां एक ही विषय पर तीन अध्याय आरंभ होते हैं - "आत्मिक वरदान।" ये वे योग्यताएं हैं जो विश्वासियों को वह सब करने के लिये दी जाती हैं, जो वे अपने आप नहीं कर सकते हैं। हमें यह समझना चाहिये कि मात्र आत्मिक वरदानों

३ तो गूंगी मूरतों के पीछे जैसे चलाए जाते थे, वैसे चलते थे। इसलिए मैं तुम्हें चेतावनी देता हूं कि जो कोई परमेश्वर के आत्मा
की अगुवाई से बोलता है, वह नहीं कहता कि यीशु श्रापित हैं; और न कोई पवित्र आत्मा के बिना कह सकता है कि यीशु
४,५ प्रभु हैं। वरदान तो कोई प्रकार के हैं, परन्तु आत्मा एक ही है। सेवाएं भी कई प्रकार की हैं, परन्तु प्रभु एक ही हैं।
६ उसी तरह प्रभावशाली कार्य कई प्रकार के हैं, परन्तु परमेश्वर एक ही हैं जो सब में हर प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करते हैं।
७,८ किन्तु सब को लाभ पहुंचाने के लिए हर एक को आत्मा का प्रकाश दिया जाता है। क्योंकि एक को आत्मा के द्वारा बुद्धि का

को रखने से कोई आत्मिक नहीं बन जाता। कुरिंथ में विश्वासियों के पास वरदान थे, किंतु वे शारीरिक लोगों या संसारिक लोगों के समान व्यवहार कर रहे थे (३:१-४)। शारीरिक और संसारिक तरीके से जीना किंतु आत्मिक वरदानों का घमण्ड करना व्यर्थ बात है! अध्याय १२-१४ में पौलुस इन वरदानों के बारे में निम्नलिखित ग्यारह बातें दिखाता है।

वरदान परमेश्वर के आत्मा से मिलते हैं, १२:४,७,११।

मसीह की आधीनता में उनका उपयोग होना चाहिये १२:३,५।

प्रत्येक विश्वासी के पास कोई न कोई वरदान है १२:७,११।

कोई विशेष वरदान सभी विश्वासियों के पास हो, ऐसा नहीं होता १२:२९,३०।

सभी वरदान दूसरों के लाभ के लिये हैं, व्यक्तिगत् लाभ के लिये नहीं १२:७; १४:३, १२,१६; १०:३३-११:१।

एकता बनाए रखने के लिये परमेश्वर वरदान देते हैं, उनके बीच विभाजन करने के लिये नहीं, १२:२५।

विश्वासियों में परमेश्वर के प्रेम का जारी रहना समस्त वरदानों या किसी एक वरदान से बढ़कर है, १३:१-१३।

विश्वासियों को आत्मिक वरदानों की चाह रखनी चाहिये - १२:३१; १४:१।

भविष्यद्वाणी सबसे बड़ा वरदान है - १४:१।

इसलिये कि किसी के पास एक वरदान है, स्वयं को दूसरों से अधिक उत्तम नहीं समझना चाहिये - ४:७; १३:४; १२:२१,२५।

इन वरदानो का उपयोग करते समय विश्वासियों के सभ्य रीति से व्यवहार करना चाहिये - १४:४०।

यदि किसी विश्वासी के पास कोई विशेष आत्मिक वरदान है, तो उसे अपने आप को दूसरों से श्रेष्ठ नहीं समझना चाहिए (४:७; १३:४; १२:२१,२५)।

इन वरदानों का उपयोग करते समय विश्वासियों को सभ्यता के साथ आचरण करना चाहिए (१४:४०)।

यदि प्रत्येक विश्वासी ने इन बातों का मन से ग्रहण किया होता, तो वरदानों के कारण कलीसियाओं में जो समस्याएं, लड़ाइयां और विभाजन हैं, वे न होते।

१२:२ - मसीही होने से पहले वे अन्धों के समान मूर्ति के पीछे जा रहे थे। उन्हें यही मालूम नहीं था, कि वे क्या कर रहे हैं और क्यों? ऐसी ताकतें और प्रभाव कार्यशील थे, जिनसे मुकाबला करना उन्हें नहीं आता था।

"गूंगी मूरतों" - भजन ११५:४-७; हबक्कूक २:१८,१९।

१२:३ - *"श्रापित"* - कुछ यहूदी ऐसा करते थे। उनका कहना था कि यीशु ने परमेश्वर की निंदा की थी। दण्ड के रूप में उन्हें क्रूस पर चढ़ाया जाना उचित था। पौलुस का कहना है कि ऐसे लोगों में परमेश्वर का आत्मा नहीं हो सकता। यीशु को स्वामी कहना, यह कहना है कि वह यहोवा परमेश्वर हैं, जो शरीर में आए। लूका २:११; फिलि. २:१०,११ देखें। बिना परमेश्वर के आत्मा के कार्य के कोई ऐसा विश्वास के साथ नहीं कह सकता। दूसरे अन्य लोग बिना उसका अर्थ जाने, मुंह से ऐसा कह सकते हैं।

१२:४-६ - सारे विश्वासियों के पास क्या है और परमेश्वर के कार्य में कौन उनका स्त्रोत है, इस पर पौलुस ज़ोर डालकर कहता है (इफि. ४:३-७ से तुलना करें)। यहां त्रिएकत्व के तीन व्यक्ति हैं (मत्ती ३:१६,१७ में त्रिएकत्व पर नोट्स देखें)।

१२:७-११ - यह ध्यान दें कि कोई भी आत्मिक वरदान (मात्र एक नहीं जैसे अद्भुत कार्य करने का और अन्य भाषाओं का) इस बात की पुष्टि करता है कि व्यक्ति में परमेश्वर का आत्मा कार्य कर रहा है।

९ वचन दिया जाता है और दूसरे को उसी आत्मा के अनुसार ज्ञान का वचन, किसी और को उसी आत्मा से विश्वास, और
१० किसी को उसी आत्मा से बीमारियों को ठीक करने के वरदान दिए जाते हैं। फिर किसी को आश्चर्य के काम करने की शक्ति;
और किसी को भविष्यद्वाणी की; और किसी को आत्माओं की परख; और किसी को अनेक प्रकार की भाषाएं; और किसी को

१२:७ - पौलुस इस बात पर निरंतर यह ज़ोर डालता है कि सब की भलाई ही मुख्य बात है (१०:२४,३३; १४:५,२६; रोमि. १४:१९; २ कुरिं. ८:१३,१४)। "प्रकटीकरण" का अर्थ है कि विश्वासियों के शरीर में जो आत्मा है (६:१९), वह आत्मिक वरदानों द्वारा अपनी उपस्थिति प्रगट करता है।

१२:८-१० - इस सूची में सभी वरदान नहीं हैं। कुछ वरदानों के सम्बंध में पौलुस ने ५:२८ और रोमि. १२:६-८ में लिखा है।

१२:८ - *"बुद्धि का वचन"* - कुछ लोगों के अनुसार, इसका अर्थ है दूसरों के साथ बुद्धिमानी और सहायक रूप में बात करना। हमें यह समझने की आवश्यकता है कि अन्य दूसरे स्थानों में, विशेषकर कुरिन्थियों की पत्री में ही अन्य स्थानों में पौलुस 'बुद्धि' और 'ज्ञान' का उपयोग किस अर्थ से करता है। बुद्धि मानवीय नहीं है, किंतु मसीह और उनके क्रूस की है (१:१७-२४)। यह सुसमाचार का परमेश्वरीय प्रकाशन है और वे गहरे सत्य जो उससे जुड़े हुए हैं (२:६)। पेन्टिकॉस्टल और कैरिस्मॅटिक लोग 'बुद्धि का वचन उस वरदान को कहते हैं जिसमें परमेश्वर का आत्मा भविष्य के बारे में कुछ बताता है।

"ज्ञान" - बुद्धि से मिलता जुलता है, किंतु वही नहीं है। इसमें लोगों और परिस्थितियों को समझने और दूसरों को मसीह के पूर्ण ज्ञान और सत्य की ओर मार्गदर्शन करने की योग्यता होती है। पेन्टिकॉस्टल और कैरिस्मॅटिक शिक्षा के अनुसार, 'ज्ञान का वचन' परमेश्वर के आत्मा द्वारा बीती हुई या वर्तमान की छिपी हुई बातों को प्रगट करना है।

ज्ञान के सम्बंध में देखें १:५; १३:२,८; १४:६; २ कुरिं. ४:६; इफि. ४:१३; फिलि. १:९; ३:८; कुलु. १:९,१०; २:३; ३:१०; २ पतरस ३:१८।

१२:९ - विश्वासी के पास जो विश्वास होता है वह परमेश्वर का दिया हुआ वरदान है (इफि. २:८,९; फिलि. १:२९)। किंतु पवित्र आत्मा विशेष विश्वास देता है, या कुछ विश्वासियों को बड़ी मात्रा में देता है (रोमि. १२:३ से तुलना करें)। जिनके पास यह नहीं होता है, उन्हें यहां दूसरे अन्य तरीकों से सेवा के लिये योग्य बनाता है।

"बीमारियों को ठीक करने का वरदान" - यह परमेश्वर की वह योग्यता है, जो लोगों को परमेश्वर की सामर्थ से चंगा करने में सहायक है। यहां बहुवचन "वरदानों" पर ध्यान दें। ऐसा लगता है कि एक ही वरदान के उपयोग से सभी प्रकार की बीमारियां ठीक नहीं होती हैं।

१२:१० - *"सामर्थ के काम करने का वरदान"* - लोगों को ठीक करने से हटकर अद्‌भुत कार्य करने की योग्यता दूसरे को यह ये सामर्थ दी जाती है। पौलुस यह नहीं बतलाता है कि वे चमत्कार कौन से हैं। किंतु हम जान सकते हैं कि वे सभी विश्वासियों के सामान्य लाभ के लिये हैं (पद ७), न कि उस व्यक्ति के बड़े नाम के लिये जिसके पास यह है।

"भविष्यद्वाणी" - यह वह वरदान है, जिसमें व्यक्ति परमेश्वर की ओर से शान्ति और प्रोत्साहन का सन्देश ग्रहण करता है और पवित्र आत्मा की सहायता से दूसरे को देता है। संदेश भविष्य से सम्बंधित हो भी सकता है या नहीं भी।

"आत्माओं की परख" - यह जानने की योग्यता है कि बोलनेवाला या भविष्यद्वाणी करने वाला व्यक्ति परमेश्वर की सहायता से ऐसा कर रहा है या नहीं। सभी लोग परमेश्वर की ओर से प्रेरित नहीं होते, जैसा कि कई बार दिखाई देता है। हो सकता है कि वह दुष्टात्मा से या अपनी ही आत्मा से प्रेरित हो। देखें १४:२९; १ यूहन्ना ४:१; १ थिस्स. ५:२०,२१; यिर्म. १४:१४।

"अनेक प्रकार की भाषाएं" - यूनानी शब्द ग्लोसाई नये नियम में ५० बार आया है (अध्याय १२-१४ में २१ बार)। अट्ठारह बार यह शारीरिक जीभ के विषय में है। बाकी समय उसका अर्थ है कोई भाषा या बोली। प्रेरित २ में जब प्रेरितों ने अन्य भाषाएं बोलीं, तब उन्होंने लोगों की भाषाएं बोलीं जिन्हें वे स्वयं नहीं जानते थे, परंतु उनके सुनने वाले जानते थे (प्रे. काम २:४,६,८,११; प्र. काम १०:४६ के नोट्स भी देखें)। क्या पौलुस यहां १२-१४ अध्याय में एक अलग अर्थ से 'अन्य

११ भाषाओं का अर्थ बताने का वरदान। परन्तु ये सब प्रभावशाली कार्य वही एक आत्मा करवाता है, और जिसे चाहता है उसे
१२ अपनी इच्छानुसार वह बांट देता है। क्योंकि जिस प्रकार देह तो एक है, परंतु उसके अंग बहुत से हैं, और उस एक देह
१३ के सब अंग, कई होने पर भी सब मिलकर एक ही देह है, उसी प्रकार मसीह भी हैं। क्योंकि हम सब ने क्या यहूदी हो,
क्या यूनानी, क्या गुलाम, क्या आज़ाद, एक ही आत्मा के द्वारा एक देह होने के लिए बपतिस्मा लिया, और हम सब को एक
१४,१५ ही आत्मा पिलाया गया, इसलिए कि देह में एक ही अंग नहीं, परन्तु बहुत से हैं। यदि पांव कहे कि मैं हाथ नहीं, इसलिए

भाषा' के विषय में कह रहा है? कुछ लोग ऐसा सोचते हैं और कुछ लोग नहीं सोचते। (१४ वें अध्याय में पौलुस कुछ रहस्यपूर्ण शब्दों का उपयोग करता है जिस कारण सन्देह बना है।)

१२:११ - पद ७। परमेश्वर का आत्मा प्रत्येक व्यक्ति को अच्छी तरह से जानता है और यह भी जानता है कि उसे कौन से वरदान की आवश्यकता है। वह अपनी इच्छा से देता है या नहीं देता है। यह उसकी समझ और प्रेममय इच्छा है। हम उस पर ज़ोर नहीं डाल सकते हैं कि वह हमें अमुक वरदान दे। हम ऐसा प्रयत्न कर सकते है। किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि उसने ऐसा किया है। हमें सर्वोत्तम वरदान की चाह रखनी चाहिये (पद ३१)। हमें बिना शिकायत, जो मिले, उसे ग्रहण करना चाहिये।

१२:१२,१३ - यूह. १७:२१-२३; इफि. १:२२,२३; ४:४; ५:२८-३०। यहां पर पौलुस सच्ची कलीसिया की बात करता है चाहे लोग कहीं भी क्यों न हो। चाहे कोई वरदान उनके पास हो या न हो। पद १३ में 'हम' का अर्थ मसीह में विश्वासी हैं, जो आत्मा से जन्मे हैं (यूह. १:१२,१३; ३:३-८)।

"एक ही आत्मा के द्वारा एक देह होने के लिये बपतिस्मा लिया" - यूनानी भाषा में उपयुक्त शब्द 'साथ' यहां पर वही है जो मत्ती ३:११ और प्रे.काम १:५ में है। यह जानना आवश्यक है। इस शब्द का अर्थ 'में', 'साथ' या 'द्वारा' है। लोग पानी का बपतिस्मा पाए हुए हो सकते हैं, अपने आप को मसीही भी कह सकते हैं और स्थानीय कलीसिया के सदस्य भी हो सकते हैं, परंतु प्रभु यीशु मसीह की सच्ची कलीसिया (उनकी देह) के अंग नहीं होते है, जब तक मन परिवर्तन और विश्वास के द्वारा मुक्ति नहीं पाते। पौलुस संस्था के विषय में नहीं कहता, परंतु एक जीवित देह के विषय में कहता है, जिसमें परमेश्वर का आत्मा रहता है और कार्य करता है। केवल परमेश्वर के आत्मा के द्वारा ही उसमें प्रवेश किया जा सकता है। पवित्र आत्मा के बपतिस्मे के विषय में दो विचारधाराएं हैं : एक यह कि उद्धार पाने से पवित्र आत्मा का बपतिस्मा मिल जाता है। दूसरी यह कि पवित्र आत्मा का बपतिस्मा पाए हुए व्यक्ति को अन्य भाषा चिन्ह के रूप में मिलती है।

प्रत्येक व्यक्ति का यह लक्ष्य होना चाहिये कि वह निरंतर आत्मा की भरपूरी (इफि. ५:१८) पाए लूका ११:१३ देखें।

"आत्मा पिलाया गया" - यूहन्ना ७:३७-३९; ४:१०,१३,१४ देखें। आत्मा केवल विश्वासियों को मसीह की देह मे ही नहीं लाता, वह उनके पास आकर उनमें निवास करता है (६:१९)।

१२:१४-२६ - कुरिंथ के लोगों को दो सिद्धांतों को सीखाने के लिये पौलुस यथार्थ में शारीरिक देह के उदाहरण का उपयोग करता है। हमें आज इन दोनों अध्यायों को सीखने की आवश्यकता है।

प्रथम, जिस प्रकार से एक शारीरिक देह में अनेक विविधताएं हैं, वैसी ही यीशु मसीह के देह में भी हैं (पद १४-२०)। सभी अंग समान नहीं है और न ही परमेश्वर ऐसा चाहते हैं। स्मरण रहे, पौलुस यहां आत्मिक वरदानों के विषय कह रहा है (पद १)। उसने कहा है कि प्रत्येक के पास एक ही वरदान नहीं हैं (पद ७-११)। देह का उदाहरण देकर वह इस सच्चाई पर ज़ोर डालता है, कि क्या वे देह के भाग नहीं है? यदि वे आश्चर्यकर्म नहीं करते या अन्य भाषा में नहीं बोलते, क्या वे दूसरों से कम है? पौलुस कहता है, ऐसा किसी को नहीं सोचना चाहिये। न ही जीभ, न ही कोई और अंग पूरा शरीर है।

दूसरी बात यह है कि जिस प्रकार अनेक अंग होने के बावजूद देह एक है, इसी प्रकार से मसीह की देह एक शरीर है। प्रत्येक अंग दूसरों पर निर्भर है (पद २१-२६)।

१६ देह का नहीं, तो क्या वह इस कारण देह का नहीं? यदि कान कहे कि मैं आंख नहीं, इसलिए देह का नहीं, तो क्या वह
१७ इस कारण देह का नहीं है? यदि सारी देह आंख ही होती, तो सुनने का कार्य कौन करता? यदि सारी देह कान ही होती,
१८ तो सूंघने का कार्य कौन करता? परन्तु सचमुच परमेश्वर ने अंगों को अपनी इच्छा के अनुसार एक एक करके देह
१९,२० में रखा है। यदि वे सब एक ही अंग होते, तो देह कहां होती? परन्तु अब अंग तो अनेक हैं, परन्तु देह एक ही है।
२१ आंख हाथ से नहीं कह सकती कि मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं, और न सिर पैर से कह सकता है कि मुझे तुम्हारी
२२,२३ आवश्यकता नहीं। परन्तु देह के वे अंग जो दूसरों से कमज़ोर दिखायी देते हैं, बहुत ही आवश्यक हैं। उसी तरह देह के
जिन अंगों को हम आदर के योग्य नहीं समझते हैं, उन्हीं को हम अधिक आदर देते हैं; और हमारे शोभाहीन अंग और भी
२४ बहुत शोभायमान हो जाते हैं। फिर भी हमारे शोभायमान अंगों को इसकी आवश्यकता नहीं, परन्तु परमेश्वर ने देह को ऐसा
२५ बना दिया है कि जिस अंग को घटी थी उसी को और भी बहुत आदर प्राप्त हो, ताकि देह में फूट न पड़े, परन्तु अंग एक
२६ दूसरे की बराबर चिन्ता करें। इसलिए यदि एक अंग दुःख पाता है, तो सब अंग उसके साथ दुःख पाते हैं। यदि एक अंग
२७ की बड़ाई होती है, तो उसके साथ सभी अंग आनन्द मनाते हैं। इसी प्रकार तुम सब मिलकर मसीह की देह हो, और
२८ उस देह के अलग अलग अंग हो। परमेश्वर ने कलीसिया में अलग अलग व्यक्ति नियुक्त किए हैं; प्रथम प्रेरित, दूसरे
भविष्यद्वक्ता, तीसरे शिक्षक, फिर अद्‌भुत कार्य करनेवाले, फिर स्वस्थ करनेवाले, और सहायक, और प्रबंध करने

१२:१८ - यह सत्य हमारी देह और कलीसिया दोनों के विषय सत्य है। प्रत्येक विश्वासी को अपने उस स्थान से संतुष्ट रहना चाहिये, जो प्रभु उन्हें देते हैं। उन्हें उस स्थान के विषय में प्रसन्न रहना चाहिये, जो प्रभु उन्हें देते हैं। यदि वह आंख है, तो उससे संतुष्ट रहें, यदि जीभ या पैर है, तो उससे संतुष्ट रहें।

१२:२१ - वह विश्वासियों के विभिन्न वरदानों की बात कर रहा है। किसी भी व्यक्ति को दूसरे विश्वासी को संगति से निकालने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। किसी को भी अपने आप को दूसरों से ऊँचा उठाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। किसी को भी इतना घमण्डी नहीं हो जाना चाहिये कि वह मसीह की देह में दूसरों की आवश्यकता को न समझे।

१२:२५ - *"देह में फूट न पड़े, परन्तु अंग एक दूसरे की बराबर चिन्ता करें"* - ये शब्द सभी विश्वासियों के हृदय पर लिखे जाने चाहिये (१:१०,१३; यूह. १३:३४; प्रे. काम ४:३२; रोमि. १२:१०; १४:१९; १५:१-३; इफि. ४:२,३)। यहां असफलता के परिणाम सचमुच में दुखदायी है और आज सभी जगह दिखते हैं।

१२:२७-३० - अब पौलुस १४-२६ पद में दिए गए उदाहरण को आत्मिक वरदान के सम्बंध में लागू करता है।

१२:२८ - *"परमेश्वर ने नियुक्त किए हैं"* - पद १८। परमेश्वर द्वारा नियुक्त किए जाने के विषय में कलीसिया में किसी को आपत्ति नहीं उठानी चाहिये। किसी दूसरे के स्थान (पद) की मांग नहीं करनी चाहिये। परमेश्वर अमुक वरदान दे, इसके लिये भी ज़ोर जबरदस्ती नहीं की जानी चाहिये। इस पद में पौलुस 'प्रथम,' 'दूसरा,' 'तीसरा' और 'फिर' शब्दों का प्रयोग करता है, जिससे यह मालूम होता है कि पौलुस महत्व के क्रमानुसार सूची बना रहा था। प्रेरितों को चंगाई करने और सामर्थ के काम करने की योग्यता दी गई थी, और उसी समय प्रेरितों के रूप में भी बुलाया गया था (मत्ती १०:१,२)।

प्रेरित वे शिक्षक थे जिनकी शिक्षा त्रृटिरहित थी। वे यीशु मसीह के सुसमाचार के रक्षक थे, जिन्होंने कलीसिया की नींव डाली थी।

भविष्यद्वक्ता प्रेरणा से संदेश देनेवाले लोग थे (पद १०)।

"सहायक" (उपकार करने वाले) - प्रत्येक विश्वासी का यह कर्तव्य है कि दूसरों की सहायता करे, किंतु कुछ लोगों के पास ऐसा करने की विशेष योग्यता है - १६:१५।

१२:२९-३० - यह स्पष्ट है कि इस सभी प्रश्नों का उत्तर नहीं में है। इस अध्याय में वह जो कुछ कहता है उसका उत्तर दिए जाने की आवश्यकता है। यह परमेश्वर की इच्छा है कि अपने लोगों को वह आत्मिक वरदान दे या न दे। जैसे वह चाहते

२९ वाले, और तरह तरह की भाषा बोलनेवाले। क्या सभी प्रेरित हैं? क्या सभी भविष्यद्वक्ता हैं? क्या सभी उपदेशक हैं? क्या
३० सभी अद्‌भुत कार्य करनेवाले हैं? क्या सब को बीमारों को ठीक करने का वरदान मिला है? क्या सब भिन्न भिन्न भाषा
३१ बोलते हैं? क्या सब अनुवाद करते हैं? तुम बड़े से बड़े वरदानों की धुन में रहो! परन्तु मैं तुम्हें और भी सब से उत्तम मार्ग
बताता हूं।
१३ यदि मैं मनुष्यों और स्वर्गदूतों की बोलियां बोलता हूं और प्रेम नहीं रखता, तो मैं ठनठनाता हुआ पीतल, और झंझनाती हुई

हैं, और जब वह चाहते हैं, तब देते हैं। यह उचित नहीं कि प्रत्येक विश्वासी को मजबूर किया जाए कि उसके पास इन वरदानों में से कोई एक वरदान या परमेश्वर के आत्मा का कोई प्रगटीकरण हो। यदि कोई व्यक्ति इस बात पर ज़ोर दे कि जिसने आत्मा का बपतिस्मा पाया है, उसके पास किसी निश्चित वरदान का होना आवश्यक है तो यह शिक्षा परमेश्वर के वचन की शिक्षा से हटकर है और एकता के लिये हानिकारक है।

१२:३१ - १४:१ देखें। एक विश्वासी को आत्मिक वरदान के लिये इच्छुक क्यों होना चाहिये? इसलिये नहीं कि उसे व्यक्तिगत रूप से संतोष मिले, इसलिए भी नहीं कि दूसरे उसे ग्रहण करें, अपना नाम कमाने के उद्देश्य से नहीं, परंतु १४:१२ के वचनों को पूरा करने हेतु। प्रत्येक व्यक्ति को दूसरों के बारे में सोचना चाहिये। अपने बारे में नहीं (१०:२४)। बड़े वरदान कौन से हैं? जिनसे दूसरों की भलाई अधिक होती (१४:३,५,१२)।

"बड़े से बड़े वरदानों की धुन में रहो" - १४:१। यह स्पष्ट है कि कुछ मसीही विश्वासी बड़े वरदानों पर मन लगाने के बजाय, उन वरदानों की लालसा कर रहे थे जिन्हें पौलुस ने पद २८ में अपनी सूची में सबसे निम्न स्थान दिया है।

"उत्तम मार्ग" - अब पौलुस आत्मिक वरदानों से अधिक महत्वपूर्ण बातों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है - अर्थात् प्रेम, परमेश्वर के समान प्रेम। यह सब वरदानों से श्रेष्ठ वरदान है। इस वरदान के अलावा, हमारे बाकी सभी वरदान व्यर्थ हैं।

अध्याय १३

१३:१ - *"प्रेम"* - यह यूनानी भाषा के 'अगापे' का अनुवाद है, जो नए नियम के लिखे जाने से पहले अधिक उपयोग में नहीं था। यूनानी भाषा में प्रेम के लिये उपयोग में लाए गए किसी और शब्द से अधिक इस शब्द 'अगापे' का उपयोग किया गया है। यह शब्द एक ऊंचे स्तर के प्रेम को दर्शाता है। यूनानी नए नियम में 'अगापे' शब्द का उपयोग ११६ बार किया गया है। इस शब्द से सम्बंधित क्रिया का इस्तेमाल १३७ बार किया गया है। इन शब्दों का उपयोग परमेश्वर के प्रेम और विश्वासियों के आपसी प्रेम और परमेश्वर के प्रति प्रेम को दर्शाने के लिये किया गया है। यह निःस्वार्थ प्रेम है जो दूसरों के हित की सोचता है। इसमें काम भावना, स्वार्थी इच्छा और दो विपरीत यौन के बीच का आकर्षण सम्मिलित नहीं है। नए नियम के अनेक पदों के द्वारा इसका अर्थ स्पष्ट हो जाता है - मत्ती ५:४४; २२:३७; यूह. ३:१६; १३:१,३४; १४:१५; १७:२४,२६; यूह. ५:५-८; इफि. ५:२५; १ पतरस १:२२; १ यूह. ३:१६-१८; ४:८,६। अगापे ईश्वरीय प्रेम है। इस महान अध्याय में, पौलुस प्रेम की आवश्यकता (पद १-३), प्रेम के स्वभाव (पद ४-७), और प्रेम के स्थायीपन (पद ८-१३) की बात करता है। वह इस बात से शुरूआत करता है कि इस पृथ्वी या स्वर्ग की किसी भी भाषा से बढ़कर प्रेम है। बिना प्रेम के, अन्य भाषाओं, या भाषण का उपयोग मात्र हल्ला गुल्ला है। स्वर्गदूतों की भाषाएं वे हैं, जो स्वर्गदूत बोलते हैं। इसलिए मनुष्यों की भाषाएं वे भाषाएं हैं जिन्हें मनुष्य बोलते हैं।

इस पद में पौलुस यह नहीं कह रहा है कि उसने स्वर्गदूतों की किसी भाषा में बातें की, न ही वह यह कहता है कि उसमें प्रेम नहीं। स्पष्ट अर्थ है यदि वह स्वर्गदूतों की भाषा में बोले और प्रेम न रखे तो कोई लाभ नहीं। पूरी बाइबिल में यह कहीं नहीं लिखा है कि कोई व्यक्ति स्वर्गदूतों की भाषा में बोलता था। जब स्वर्गदूत पृथ्वी पर आए, तब उन्होंने मनुष्यों की भाषा में बातचीत की, क्योंकि वे चाहते थे कि लोग उन्हें समझें।

२ झांझ हूं। यदि मैं भविष्यद्वाणी कर सकता हूं, और सब भेदों और सब प्रकार के ज्ञान को समझता हूं, और मुझे यहां तक
३ पूरा विश्वास है कि मैं पहाड़ों को हटा सकता हूं, परन्तु प्रेम नहीं रखता, तो मैं कुछ भी नहीं। यदि मैं अपनी सम्पूर्ण संपत्ति
४ कंगालों को खिला देता हूं या अपनी देह जलाने के लिए दे देता हूं और प्रेम नहीं रखता, तो मुझसे कोई लाभ नहीं। प्रेम
५ धीरजवन्त है, और कृपाल है। प्रेम ईर्ष्या नहीं करता। प्रेम अपनी बड़ाई नहीं करता, और फूलता नहीं। वह बदतमीज़ी नहीं

१३:२ - पौलुस कलीसिया में अन्यभाषा से अधिक बड़े वरदानों के विषय में कहता है, वह विश्वासियों से कहता है कि वे इससे भी बड़े वरदानों की धुन में रहें। परंतु प्रेम के बिना ये सारे वरदान व्यक्ति को मूल्यहीन ठहराते हैं। प्रेम इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण हैं कि हम परमेश्वर के लोग हैं, और हमने पवित्र आत्मा का बपतिस्मा पाया है। प्रेम आत्मा का वह प्रकाशन है जिसे हर एक विश्वासी के जीवन में प्रगट होना चाहिए।

१३:३ - क्या यह संभव है कि जो कुछ हमारे पास है हम वह सब बांट दें या बलिदान कर दें और प्रेम न रखें? हां! परमेश्वर से कुछ प्राप्त करने की चाह से व्यक्ति ऐसा कर सकता है या नरक के डर से। वह अपने मत और आदर्शों के प्रति अपने समर्पण के कारण ऐसा कर सकता है। इन सब के बारे में बहुत से लोग धोखा खा चुके हैं। वे यह सोचते हैं कि अच्छे कार्यों के द्वारा परमेश्वर के पक्ष को हासिल कर सकते हैं। किंतु यह सब बेकार है। हमारे अच्छे कार्य जो बिना ईश्वरीय प्रेम के हैं, जो परमेश्वर और मनुष्य के प्रति निस्वार्थ प्रेम के बिना हैं, अच्छे कार्य नहीं है। वे बुरी नियत के कारण बहुत बुरे हो सकते हैं।

१३:४-७ - प्रेम की प्रवृत्ति के विषय पौलुस के जो शब्द हैं, वे मसीह यीशु के जीवन में पूरे होते हुए दिखाई देते हैं। परमेश्वर प्रेम हैं (१ यूह. ४:८)। परमेश्वर देह में होकर मसीह में आए। अपने प्रेम के जीवन में वह सभी विश्वासियों के लिये एक आदर्श थे।

१३:४ - *"धीरजवन्त"* - यूनानी भाषा के शब्द का अर्थ यहां है 'सहते रहना'। यह एक ऐसे रवैये, मन और योग्यता की ओर संकेत करता है जो कठोर शब्द, कार्यों, चोटों के बिना बदला लिए और बिना कड़वाहट के सहने के लिए तैयार रहना है। मसीह के पूरे जीवन भर यह उनका रवैया था और विशेषकर उनके परखे जाने और मारे जाने के समय - यशा. ५३:७; मत्ती २७:१४; लूका २३:३४; १ पतरस २:२१-२३। उनके माननेवालों का यह गुण होना चाहिये - मत्ती १८:२२; गल. ५:२२; इफि. ४:२; कुलु. १:११; ३:१२ से तुलना करें।

"कृपाल" - इसका अर्थ है क्रियात्मक रीति से दूसरों की सहायता करना, यहां तक कि उनके प्रति भी जो इस योग्य नहीं हैं। इस गुण के कारण हम उपयोगिता और सेवा के लायक हो सकेंगे। मसीह के जीवन का यह एक महत्वपूर्ण गुण था। मत्ती ४:२३,२४; २०:२८; प्रेरित. १०:३८। अपने अनुयायियों में मसीह इस गुण को देखना चाहते हैं - मत्ती २५:३१-४०; लूका ६:३५; इफि. ४:३२; कुलु. ३:१२।

"ईर्ष्या" - इस भयंकर पाप के विषय देखें नीति. १४:३०; २७:४; मत्ती २७:१८; प्रेरित. ७:६; १३:४५; १७:५। डाह दूसरों की सफलता, ख्याति या सम्पत्ति को देखकर पीड़ा और कड़वाहट होना, ईर्ष्या करना है। यह प्रेम के बिलकुल विरोध में है और मसीह इसके दोषी कभी नहीं थे। मसीह के माननेवालों को इससे बचे रहना चाहिये - रोमि. १३:१३; याकूब ३:१४-१६।

"अपनी बड़ाई नहीं करता" - 'घमण्ड', प्रेम दूसरों को ऊपर उठाना चाहता है या दूसरों के बारे में खुश होता है। *"फूलता नहीं"* - या 'घमण्ड' नहीं करता। दूसरों के द्वारा प्रेम बड़ाई नहीं चाहता। यह सीमा में रहता है। मसीह के जीवन में परिपूर्ण रूप में दिखता है। इस बात में भी उसके विश्वासियों को उसको नमूना बनाना चाहिये (मत्ती ११:२६)। प्रेम अधिकार को खोने के लिये तैयार होता है उस पर ज़ोर डालने के लिये नहीं (मत्ती १०:३८,३६; लूका ६:२३)।

१३:५ - *"बदतमीज़ी नहीं करता"* - या उचित रीति से नहीं। प्रेम कभी भी ऐसा व्यवहार नहीं करेगा जिससे किसी का अपमान हो। ऐसा कार्य नहीं करेगा जिससे किसी को लज्जा महसूस हो।

"अपना फायदा नहीं देखता" - संसार जिन बातों को महत्वपूर्ण समझता है जैसे, धन, वस्तुएं, ख्याति, या शक्ति या प्रशंसा, इन सब बातों के पीछे प्रेम नहीं जाता। यह लोभी नहीं होता है। यह दूसरों की भलाई चाहता है। हम यह मसीह में देखते

६ करता। वह अपना फायदा नहीं देखता। वह झुंझलाता नहीं और बुरा नहीं मानता। बुरे कामों से खुश नहीं होता, परन्तु
७ सत्य का पक्ष लेने से प्रसन्न होता है। वह सब बातें सह लेता है, सब बातों में भरोसा रखता है। वह आशा से भरपूर रहता
८ है। सब कुछ धीरज से सहता है। प्रेम कभी असफल नहीं होता। भविष्यद्वाणियां हों, तो समाप्त हो जाएंगी। भाषाएं हों, तो जाती

हैं। हमें यह उनके माननेवालों में भी दिखना चाहिये (१०:२४; रोमि. १५:१,२)।

"वह झुंझलाता नहीं" - इसका अर्थ जल्दी नाराज़ नहीं होना है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह पाप के विरोध में क्रोधित नहीं होता (परमेश्वर प्रेम हैं, वह मनुष्यों की दुष्टता के विरोध में निरंतर क्रोधित रहते हैं - रोमियों १:१८; यूहन्ना ३:३६; भजन ७:११)। मरकुस ३:५ भी देखें। परंतु यह एक अलग बात है और यूनानी भाषा में अलग शब्द का उपयोग किया गया है।

"बुरा नहीं मानता" - प्रेम गलतियों को ढांकता है, क्षमा करता है, बदला लेने की योजना नहीं बनाता (मत्ती ५:३८-४८; लूका २३:३४; प्रेरित. ७:५६,६०; १ पत. ४:८)। प्रेम यह सोचता नहीं कि दूसरे लोग बुरी नियत से कुछ कर रहे हैं। यह दूसरों पर दोष लगाना पसंद नहीं करता। जो मसीही वैसा प्रेम करते हैं, जैसा उन्हें करना चाहिये, यह सोचने का प्रयत्न करते हैं कि दूसरे उनसे अच्छे हैं (फिलि. २:३)। वे किसी को दोषी नहीं ठहराना चाहेंगे (रोमि. १४:४,१०,१३)।

१३:६ - ईश्वरीय प्रेम कमज़ोर, दिखावटी और गलत बातों के प्रति भावनाहीन नहीं होता है। यह बुराई से समझौता नहीं करता है। दुष्टता को देखकर यह मुस्कुराता नहीं है। बुराई को देखकर प्रसन्न न होने का अर्थ हुआ हर बुराई पर दुख मनाना। जब सत्य की जीत होती है तब बहुत आनंदित होता है। प्रेम और सत्य घनिष्ठ मित्र हैं। यहां सत्य को दुष्टता के विरोध में रखा गया है। दुष्टता का अर्थ है अंधकार, झूठ, धोखा, और परमेश्वर के सत्य को दबा देना (यूहन्ना ३:१६,२०; रोमि. १:१८; २ थिस्स. १०,१२)। पौलुस यहां जिस सत्य की बात करता है उसका सम्बंध प्रकाश, सच्चाई और परमेश्वर से है। यह वह सत्य है जिसका मसीह में साक्षात् दर्शन होता है (यूह. १४:६)। यदि हम इस सत्य में आनंदित नहीं होते हैं तो हमें बेकार में यह कल्पना नहीं करना चाहिये, कि जिस प्रेम की बात पौलुस करता है, वह हमारे पास है। इसके बगैर, हम हैं क्या?

१३:७ - *"सहता है"* - इस यूनानी शब्द का अर्थ रक्षा करना या ढांकने के द्वारा संभालना है। चाहे कुछ भी आ पड़े, प्रेम सहता है। यह ऐसी ढाल है जो ढांकती और रक्षा करती है।

"भरोसा रखता है" - प्रेम प्रत्येक झूठ और मनुष्यों द्वारा बतायी कहानी पर विश्वास नहीं करता है। वह झूठे शिक्षकों की शिक्षा पर विश्वास नहीं करता। शैतान की कही बात पर यह विश्वास नहीं करता है। यह अर्थ नहीं है। प्रेम सत्य में आनंदित होता है (पद ६)। वह सत्य को पहचान लेता है। यह बिना सवेदना (चेतना), सकरा और अंधा नहीं होता है। स्वभाव से यह संदेह करनेवाला और दिवाना नहीं होता है, किंतु भरोसा करनेवाला होता है। यह लोगों को छूट देता है कि यदि वह संदेह करें तो करें।

"आशा से भरपूर रहता है" - प्रेम जल्दी निराश नहीं होता है। असफलता इसे कुचल नहीं पाती। जब कहीं आशा न दिखे, तब भी आशा रखता है। यह विश्वास करता है कि परमेश्वर का हाथ किसी व्यक्ति तक पहुंच कर उसे और उसकी स्थिति को बदल सकता है।

"सह लेता है" - बना रहता है। यूनानी शब्द मिलिट्री में उपयोग में लाए जाने वाले शब्द से निकला है। इसका अर्थ है शत्रु के प्रत्येक हमले को सहना (इफि. ६:१०-१७; २ तीमु. २:१० से तुलना करें)। "अगापे" मनुष्य के लिये परमेश्वर का निःस्वार्थ प्रेम सभी समस्याओं, सताव, दुखों, शैतान के और मनुष्यों के आक्रमण को सह लेता है। यह विश्वासियों को विजयी से बढ़कर बनाता है।

१३:८-१२ - अर्थ यह हुआ कि प्रेम, 'अगापे' निरंतर बना रहेगा। परमेश्वर प्रेम हैं और जो उनसे प्रेम करते हैं वे अनंतकाल तक उनके संग रहेंगे। दूसरी और बातें जो अच्छी और लाभदायक हैं वे जाती रहेंगी। वह अन्यभाषाओं, भविष्यद्वाणियों और ज्ञान की ओर संकेत करने से ऐसा लगता है कि वह १२:८-१० के आत्मिक वरदानों की ओर संकेत कर रहा है, किंतु इसका

९,१० रहेंगी। ज्ञान हो, तो मिट जाएगा। क्योंकि हमारा ज्ञान अधूरा है, और हमारी भविष्यद्वाणी अधूरी है। परन्तु जब सर्वसिद्ध
११ प्रभु आएंगे, तो अधूरा मिट जाएगा। जब मैं बालक था, तो मैं बालकों के समान बोलता था। बालकों का सा मेरा मन था,
१२ बालकों की सी समझ थी। परन्तु जब मैं सयाना हो गया, तो मैंने बालकों की बातें छोड़ दीं। अब हमें दर्पण में धुंधला सा
दिखाई देता है; परन्तु उस समय हम आमने सामने देखेंगे। इस समय मेरा ज्ञान अधूरा है; परन्तु उस समय ऐसी पूरी रीति
१३ से पहचान पाऊंगा, जैसा मैं पहचाना गया हूं। पर अब विश्वास, आशा, प्रेम ये तीनों स्थाई हैं, परंतु इनमें सब से बड़ा प्रेम है।

अर्थ इससे बढ़कर है।

कुछ बाइबिल जानने वाले कहते हैं कि न्यू टेस्टामेन्ट की पुस्तकों के संकलन के बाद पवित्र आत्मा के वरदान समाप्त हो जाएंगे - उस समय तक वरदानों की आवश्यकता थी क्योंकि कलीसिया को परमेश्वर के सत्य का पूर्ण प्रकाशन नहीं मिला था। उसके बाद वरदानों की आवश्यकता नहीं थी, और वे समाप्त हो गए। वे सोचते हैं कि कलीसिया के शिशुकाल ही में उनकी आवश्यकता थी (पद ११)।

इस अध्ययन के लेखक को ऐसी बात सही नहीं लगती। पद १२ का अर्थ वह समय हो सकता है जब इस युग का अंत होगा या स्वर्ग में विश्वासी मसीह के साम्हने खड़े होंगे। यह वह समय नहीं था जब न्यू टेस्टामेन्ट (बाइबिल का दूसरा नाम) बन चुका था। 'सिद्धता' का समय वह है जब वे इस प्रकार जानेंगे, जैसा मसीह उन्हें जानते हैं। न्यू टेस्टामेन्ट बनने तक ऐसा नहीं हुआ था।

१३:८ - *"ज्ञान हो, तो मिट जाएगा"* - यहां संदर्भ देखने से ज्ञात होता है कि शायद पौलुस यह कहना चाहता था कि 'ज्ञान का वचन' देने की योग्यता जाती रहेगी (१२:८)। यह अपूर्ण ज्ञान हो सकता है। यह ऐसा ज्ञान जो तर्क करने और खोजबीन करने से मिलता है। उस सिद्ध ज्ञान के सम्बंध में जो आने वाला है, वह सब आवश्यक न होगा (पद १२)।

१३:११ - शायद उसका मतलब यह था कि पृथ्वी पर विश्वासियों का जीवन बचपन के समान है। मसीह के आने के बाद ही वे पूरी रीति से परिपक्व होंगे। एक ऐसा संकेत मिलता है कि प्रेम और आत्मिक वरदानों के सम्बंध में भी हमें अभी भी लापरवाह नहीं होना चाहिये - १४:२० देखें।

१३:१२ - *"धुंधला"* - उन दिनों में अधिकांश दर्पण रद्दी किस्म के हुआ करते थे और उसमें धुंधलापन रहा होगा। संपूर्ण ज्ञान के सम्बंध में वर्तमान की स्थिति यही है।

१३:१३ - विश्वासी के व्यक्तिगत जीवन और कलीसियाई जीवन में ये तीन महत्वपूर्ण हैं - ये किसी भी आत्मिक वरदान से अधिक महत्व रखते हैं। क्या यह आश्चर्य की बात है कि पौलुस कहता है कि प्रेम विश्वास या आशा से बड़ा है? हमारे उद्धार के लिए विश्वास आवश्यक है (यूहन्ना ३:३६)। आशा यह अपेक्षा है कि परमेश्वर अपनी प्रतिज्ञाओं को पूरा करेंगे। यह मसीही जीवन का एक महत्वपूर्ण भाग है। (रोमि. ८:२४,२५)।

प्रेम इन सबसे बढ़कर कैसे है? विश्वास प्राप्त करता है, प्रेम देता है। लेने से देना अधिक अच्छा है (प्रे. काम २०:३५)। विश्वास एक हाथ के समान है जो प्राप्त करता है, और वह महान वस्तु है जिसे प्राप्त किया जाता है। आशा विश्वास के समान है और अपनी भलाई के लिए ग्रहण करती है। प्रेम दूसरों की भलाई सोचता है। लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विश्वास और आशा माध्यम हैं। जिस बात से लोगों की अधिक भलाई होती है वह सर्वश्रेष्ठ और उत्तम है। प्रेम यही करता है (८:१)। पौलुस ने विश्वासियों को जो कुछ करने के लिए कहा, वह प्रेम ही लोगों को वह कार्य करने के लिए प्रेरित करता है जो १०:२४ और १०:३१ में है।

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात एक महत्वपूर्ण प्रश्न बना रहता है। हमें यह परमेश्वर और मनुष्यों के लिए निःस्वार्थ प्रेम किस प्रकार मिले (गलतियों ५:२२; १ यूहन्ना ४:७,१९; रोमि. १५ में प्राप्त होती है। विश्वासियों को इसके प्रति समर्पण करके आज्ञा माननी चाहिए और अभ्यास करना चाहिए (१४:१)।

१४ प्रेम का अनुकरण करो, और आत्मिक वरदानों की भी धुन में रहो, विशेष करके यह कि भविष्यद्वाणी करो। क्योंकि जो
न सीखी हुई भाषा में बातें करता है, वह मनुष्यों से नहीं, परन्तु परमेश्वर से बातें करता है; इसलिए कि उसकी कोई नहीं समझता;
३ क्योंकि वह भेद की बातें आत्मा में होकर बोलता है। परन्तु जो भविष्यद्वाणी करता है, वह मनुष्यों से उन्नति, और उपदेश,
४ और शान्ति की बातें कहता है। जो न सीखी हुई भाषा में बातें करता है, वह खुद की उन्नति करता है; परन्तु जो भविष्यद्वाणी
५ करता है, वह कलीसिया की उन्नति करता है। मैं चाहता हूं कि तुम सब न सीखी हुई भाषा में बातें करो, परन्तु अधिकतर यह

अध्याय १४

१४:१ - *"प्रेम का अनुकरण करो"* - यह अध्याय पौलुस ने इसलिए लिखा ताकि हम प्रेम के मार्ग को अपना सकें। इसलिए नहीं कि हम प्रेम की प्रकृति पर आश्चर्य करें, या उसके लेख की प्रशंसा करे।

"धुन" - १२:३१।

"भविष्यद्वाणी" - १२:१०। इससे ऐसा लगता है कि कुरिन्थ के विश्वासी जिन वरदानों को प्राप्त कर सकते थे, उनमें पौलुस इस वरदान को सर्वश्रेष्ठ समझता था। इस अध्याय का अधिकांश भाग ये दिखाता है कि भविष्यद्वाणी अन्य भाषा से किस प्रकार बढ़कर है। (उस समय को छोड़कर जब कोई व्यक्ति अन्य भाषा में सन्देश देता है और उसका अर्थ बताता है; उस समय को छोड़ जब वह अलग तरह से भविष्यद्वाणी करता है - पद ५)।

१४:२ - कुछ लोगों को ऐसा लगता है कि कुरिंथ में जो लोग अन्य भाषा बोल रहे थे, वह उस आत्मिक वरदान से भिन्न थी जिसका वर्णन हम २ कुरि. ४:११ में पाते हैं। पिन्तेकुस्त के दिन प्रेरितों ने ऐसी भाषा बोली जिसे उन्होंने सीखा नहीं था, या जिसे वे जानते नहीं थे। जो लोग वहां उपस्थित थे उन्होंने बिना अनुवाद के उसे समझ लिया था। कुरिन्थ में जो अन्य भाषा बोली जा रही थी उसे समझने के लिए अनुवाद की आवश्यकता होती थी (पद ५,१३)। परंतु किस कारण से ऐसा माना जाता है कि "न सीखी हुई भाषा" का अर्थ पृथ्वी पर बोली जाने वाली भाषा नहीं।

"न सीखी हुई भाषा" - यूनानी भाषा में यहां अज्ञात शब्द नहीं हैं। उसका यहां जोड़ा जाना इस कारण उचित लगता है इस का कारण "कोई उसकी नहीं समझता" ये शब्द हैं, उसी तरह यदि कलीसिया की उन्नति नहीं होती (पद ५) तो उसकी अर्थ बताना ज़रूरी हो जाता है। परंतु "न सीखी हुई" का अर्थ ऐसी भाषा नहीं जिसे पृथ्वी पर कोई नहीं समझ सकता या उपयोग करता, परंतु केवल ऐसी भाषा जिसे लोग नहीं जानते।

"परमेश्वर से" - इसका अर्थ ये हुआ कि वह मनुष्य जो बोलता था और परमेश्वर को छोड़कर सभा में बैठा हुआ कोई व्यक्ति उसे समझ नहीं सकता था (पद ४:२८)।

"भेद की बातें" - ४:१; मत्ती १३:११; रोमि. १६:२५।

१४:३,४ - यही कारण है कि भविष्यद्वाणी अन्य भाषा से उत्तम है - ये दूसरों के लाभ के लिए है (१०:२४ और ३३)।

"खुद की उन्नति करता है" - इसका अर्थ ये है, अपने को दृढ़ करना। अपने को दृढ़ करना आत्मिक सामर्थ हासिल करना। (देखें ८:१; १०:२३; १ कुलु. ५:११)। क्या ऐसी भाषा जिसे स्वयं बोलने वाला नहीं समझता, उस व्यक्ति को उन्नति प्रदान कर सकती है? यह असंभव जान पड़ता है। क्या पौलुस के कहने का अर्थ है कि बोलने वाला उन्नति पाता है क्योंकि वह समझता है कि वह क्या कहता है, हालांकि दूसरे उसे नहीं समझ सकते। यह संभव है। सामान्य तौर पर, हम यही समझते हैं कि सच्चाई को सुनने और समझने से उन्नति होती है। अगला पद देखें।

१४:५ - पौलुस अन्य भाषा के वरदान को तुच्छ नहीं जान रहा है। उसी ने यह शिक्षा दी है कि यह कलीसिया की भलाई के लिए परमेश्वर की आत्मा का प्रगटीकरण (१२:७,१०) है। किन्तु पौलुस इस वरदान के गलत इस्तेमाल के विरोध में कह रहा है। वह कहता है कि बिना अनुवाद के अन्य भाषा नहीं बोलनी चाहिए (पद १३:२७,२८)।

"अनुवाद न करे" -इससे यह सूचित होता है कि अन्य भाषा एक अर्थपूर्ण भाषा है जिसका अर्थ बोलने वाला दूसरी भाषा में बता सकता है। और जो कुछ न सीखी हुई भाषा में कहा गया है, यदि उसका अर्थ बताया जाए, तो उसके

चाहता हूं कि भविष्यद्वाणी करो। क्योंकि यदि न सीखी हुई भाषा बोलनेवाला कलीसिया की उन्नति के लिए अनुवाद न करे, तो
६ भविष्यद्वाणी करने वाला उससे बढ़कर है। इसलिए हे भाइयो, यदि मैं तुम्हारे पास आकर न सीखी हुई भाषा में बातें करूं, और
७ प्रकाश, या ज्ञान, या भविष्यद्वाणी, या उपदेश की बातें तुमसे न कहूं, तो मुझ से तुम्हें क्या लाभ होगा? इसी प्रकार यदि निर्जीव
वस्तुएं भी, जिनसे ध्वनि निकलती है जैसे बांसुरी, या बीन, आदि के स्वरों में यदि भेद न हो, तो जो फूंका या बजाया जाता
८,९ है, उसे हम कैसे पहचान पाएंगे? यदि तुरही का शब्द, स्पष्ट सुनाई न दे, तो कौन लड़ाई के लिए तैयारी करेगा? ऐसे ही
तुम भी यदि जीभ से साफ साफ बातें न कहो, तो जो कुछ कहा जाता है, वह कैसे समझा जाएगा? तुम तो हवा से बातें करनेवाले
१०,११ ठहरोगे! जगत में कई प्रकार की भाषाएं क्यों न हों, परन्तु उनमें से कोई भी बिना अर्थ की नहीं है। इसलिए यदि मैं किसी
भाषा का अर्थ नहीं समझता, तो बोलनेवाले की दृष्टि में परदेशी ठहरूंगा; और बोलनेवाला मेरे दृष्टि में परदेशी ठहरेगा।
१२ इसलिए तुम भी जब आत्मिक वरदानों की धुन में हो, तो ऐसा प्रयत्न करो कि तुम्हारे वरदानों के द्वारा कलीसिया की उन्नति
१३,१४ हो। इस कारण जो न सीखी हुई भाषा बोलता है, वह प्रार्थना करे कि उसका अनुवाद भी कर सके। इसलिए यदि मैं न सीखी
१५ हुई भाषा में प्रार्थना करूं, तो मेरी आत्मा प्रार्थना करती है, परन्तु मेरी बुद्धि काम नहीं देती। इसलिए क्या करना चाहिए? मैं
१६ आत्मा से भी प्रार्थना करूंगा, और बुद्धि से भी प्रार्थना करूंगा। मैं आत्मा से गाऊंगा, और बुद्धि से भी गाऊंगा। नहीं तो
यदि तुम आत्मा ही से धन्यवाद करोगे, तो फिर अज्ञानी तुम्हारे धन्यवाद पर सहमत कैसे होगा? क्योंकि वह तो नहीं जानता
१७,१८ कि तुम क्या कहते हो? तुम तो भली भांति से धन्यवाद करते हो, परन्तु दूसरे की उन्नति नहीं होती। मैं अपने परमेश्वर
१९ का धन्यवाद करता हूं कि मैं तुम सब से अधिक न सीखी हुई भाषा में बोलता हूं। परन्तु कलीसिया में अन्य भाषा में दस हज़ार
२० बातें कहने से यह मुझे और भी अच्छा जान पड़ता है, कि दूसरों के सिखाने के लिए बुद्धि से गिनी-चुनी बातें कहूं। हे भाइयो,

---

द्वारा लोगों की आत्मिक उन्नति होती है। पौलुस इस बात पर बल देता है कि जो कुछ कहा जाता है उसे समझने के द्वारा, उन्नति प्राप्त होती है।

१४:६ - १२:८,१० देखें। "लाभ।" - पौलुस दूसरों की भलाई के विषय में सोचता था और चाहता था कि लोग भी ऐसा ही करें। (१२:१९,२६)।

"प्रकाश" - पद २६। इसका अर्थ है किसी पर परमेश्वर द्वारा प्रगट किया गया संदेश दूसरों को बताया जाना। यह सम्भव है कि भविष्यद्वाणी का वरदान और प्रकाशन एक ही समय में एक सभा में आ जाए (पद २९:३१)।

१४:७-११ - पौलुस के कहने का अर्थ यहां यह है कि बिना अर्थ बताए अन्य भाषा में बोलना सुनने वालों के लिए बेकार है। पद १०,११ यह बताते हैं कि अन्य भाषा जिसका उल्लेख पौलुस यहां करता है, वह एक साधारण विदेशी भाषा थी।

१४:१२ - पद ३,४,६; १९,२६,३१; १०:२४;

१४:१३ - अर्थ बता देने पर ही दूसरों को लाभ मिलेगा।

१४:१४-१५ - मन और समझ को जो महत्व पौलुस देता है, उस पर ध्यान दें। इस कठिन वाक्यांश - "मेरी बुद्धि कार्य नहीं करती है" का पौलुस की दृष्टि में क्या अर्थ है? संभावना यह है कि एक व्यक्ति ऐसी भाषा में प्रार्थना करता है जो वह स्वयं नहीं समझता, किन्तु उसका भीतरी मनुष्यत्व प्रार्थना करता है। उसकी बुद्धि से वह परे है। व्यक्ति स्वयं नहीं समझता कि वह क्या कहता है। पौलुस यहां 'न सीखी' और सीखी हुई दोनों भाषा में प्रार्थना को प्रात्साहन देता है।

१४:१८ - *"उन्नति"* - पौलुस निरंतर इस विषय पर ज़ोर डालता है -(पद ३,४,१६,२६)।

१४:१८ - *"न सीखी हुई भाषाएं"* - ऐसा नहीं कि पौलुस के पास यह वरदान नहीं था। उसके पास था और वह उसके लिए धन्यवाद भी देता है। कुछ लोगों के अनुसार इसका अर्थ, उस समय की अनेक भाषाओं का ज्ञान होना था।

१४:१९ - *"दूसरों को सिखाने के लिए"* - पौलुस सदैव दूसरों के बारे में सोचता रहता था कि उनकी उन्नति कैसे करे, उन्हें कैसे सिखाए, प्रोत्साहित करे, मजबूत करे और शान्ति दे।

१४:२० - १३:१२ देखें।

२१ बहनो, तुम समझ में बालक न बनो। तौभी बुराई में तो बालक रहो, परन्तु समझ में सयाने बनो। व्यवस्था में लिखा है कि
प्रभु कहते हैं, मैं अन्य भाषा बोलनेवालों के द्वारा, और पराए मुख के द्वारा इन लोगों से बातें करूंगा, तौभी वे मेरी न सुनेंगे।
२२ इसलिए अन्यान्य भाषाएं विश्वासियों के लिए नहीं, परन्तु अविश्वासियों के लिए चिन्ह हैं, और भविष्यद्वाणी अविश्वासियों
२३ के लिए नहीं, परन्तु विश्वासियों के लिए चिन्ह है। इसलिए यदि कलीसिया एक जगह इकट्ठी होती है, और सब के सब अन्यान्य
२४ भाषा बोलते हैं, और अनपढ़ या अविश्वासी लोग भीतर आ जाएं, तो क्या वे तुम्हें पागल न कहेंगे? परन्तु यदि सब
भविष्यद्वाणी करने लगें, और कोई अविश्वासी या अनपढ़ मनुष्य भीतर आ जाए, तो सब उसे दोषी ठहरा देंगे और परख
२५ लेंगे, और उसके मन के भेद प्रगट हो जाएंगे। तब वह मुंह के बल गिरकर परमेश्वर को दण्डवत करेगा और मान लेगा,
२६ कि सचमुच परमेश्वर तुम्हारे बीच में हैं। इसलिए हे भाइयो, क्या करना चाहिए? जब तुम इकट्ठे होते हो, तो हर एक के
हृदय में भजन, या उपदेश, या अन्य भाषा, या प्रकाश, या अन्य भाषा का अर्थ बताना रहता है। सब कुछ आत्मिक उन्नति
२७ के लिए होना चाहिए। यदि न सीखी हुई भाषा में बातें करनी हों, तो दो दो, या ज्यादा से ज्यादा तीन तीन जन बारी बारी बोलें,
२८ और एक व्यक्ति अनुवाद करे। परन्तु यदि अनुवाद करनेवाला न हो, तो अन्य भाषा बोलनेवाला कलीसिया में शान्त रहे,
२६ और अपने मन से, और परमेश्वर से बातें करे। भविष्यद्वक्ताओं में से दो या तीन बोलें, और बाकी लोग उनके वचन

१४:२१,२२ - यशा. २८:११ और १२। इस्राएली लोग अविश्वास में गिर गए थे और भविष्यद्वक्ताओं की नहीं सुनते थे जो उसी भाषा में बोलते थे जिन्हें वे समझ सकते थे। इसलिए दण्ड के रूप में परमेश्वर ऐसी भाषा बोलने वालों को उनके बीच भेजता था, जिनकी वे समझते नहीं थे। मसीहियों के लिए पौलुस यहां एक सीख रखता है। वह कहता है कि अन्य भाषा एक “चिन्ह” है - उन्होंने परमेश्वर के आत्मा की उपस्थिति की ओर संकेत किया था (१२:७)। वह कहता है कि यह चिन्ह विश्वासियों को कायल करने के लिए नहीं है, न ही यह अन्य भाषा बोलने वालों को यह निश्चयता दिलाने के लिए की मसीह का आत्मा उसमें है। (उससे बड़ा और अधिक आवश्यक प्रमाण उसके पास है)। अन्य भाषा अविश्वासियों के लिए चिन्ह है (प्रे. २:४-१३ से तुलना करें)। विश्वासियों की उन्नति के लिए भविष्यद्वाणी दी गई थी (पद ३,४)।

हम ध्यान दें कि पद २१ में “अन्य भाषा” उन भाषाओं को दर्शाती है जो विदेशों में बोली जाती हैं।

१४:२३ - २२ में पौलुस अन्यभाषा के वरदान के सही उपयोग की बात करता है। यहां अनुचित उपयोग के संबंध में कहता है - सभी अन्य भाषा बिना अनुवाद के बोलते हैं।

१४:२४,२५ - *“अनपढ़”* - (पद २४) का अर्थ है ऐसा व्यक्ति जो मसीह के संदेश और उनकी शिक्षाओं को नहीं समझता है। वह भविष्द्वाणी को सुनकर पापों से कायल होकर मसीह में विश्वासी बन सकता है।

“दोषी ठहरा देंगे” - यूहन्ना १६:८-११ से तुलना करें।

१४:२६-४० - मसीही विश्वासियों की मण्डली में पौलुस आत्मिक वरदानों के सही इस्तेमाल की बात करता है। वह सभ्यता के ऊपर ज़ोर डालता है (पद २६,३१,३३,४०)।

१४:२६ - *“प्रकाश”* - पद ६। *“उन्नति”* - पद ३,४,१२,३१। यूनानी शब्द में इसका अर्थ है, एक घर *“बनाना”* आत्मिक रीति से इसका अर्थ है आत्मिक विकास करना।

१४:२७ - *“बारी बारी”* - ऐसा लगता है कि एक ही समय में अनेक लोग बोलना चाह रहे थे और एक गड़बड़ी थी।

“अनुवाद करे” - पद ५,१३।

१४:२८ - *“अपने मन से”* - पद २। इसका अर्थ यह हो सकता है कि जिनके पास अन्यभाषा का वरदान है बिना ज़ोर से बोले बिना अपने वरदान का उपयोग कर सकते थे।

१४:२६ - *“परखे”* - १ थिस्स. ५:२०,२१। झूठे भविष्यद्वक्ताओं और झूठी भविष्यद्वाणियों की संभावना के कारण उन्हें जो कुछ कहा जाता था उसे परखना आवश्यक था। उन्हें इन भविष्यद्वाणियों को कैसे परखना था? यह देखना था कि पुरानी वाचा के वचन और मसीह और प्रेरितों की शिक्षा के समानांतर यह शिक्षा थी कि नहीं। कोई भी ऐसी शिक्षा जो इनके विपरीत थी, वह झूठी और खतरनाक थी।

३०,३१को परखें। परन्तु यदि दूसरे के पास जो बैठा है, कुछ ईश्वरीय प्रकाश हो, तो पहला चुप हो जाए। क्योंकि तुम सब बारी
३२ बारी से भविष्यद्वाणी कर सकते हो, ताकि सब सीखें, और सब शान्ति पाएं। क्योंकि भविष्यद्वक्ताओं का आत्मा
३३ भविष्यद्वक्ताओं के वश में है। क्योंकि परमेश्वर गड़बड़ी के नहीं, परन्तु शान्ति के कर्ता हैं। जैसा पवित्र लोगों की सब
३४ कलीसियाओं में है, स्त्रियां कलीसिया की सभा में चुप रहें, क्योंकि उन्हें बातें करने की आज्ञा नहीं है, परन्तु आधीन रहने
३५ की आज्ञा है, जैसा व्यवस्था में लिखा भी है। यदि वे कुछ सीखना चाहती हैं, तो घर में अपने अपने पति से पूछें, क्योंकि
३६ स्त्री का कलीसिया में बातें करना शर्म की बात है। क्या परमेश्वर का वचन तुम्हारे द्वारा निकला? या केवल तुम ही तक
३७ पहुंचा है? यदि कोई मनुष्य अपने आप को भविष्यद्वक्ता या आत्मिक जन समझता है, तो यह जान ले कि जो बातें मैं तुम्हें
३८,३९लिखता हूं, वे प्रभु की आज्ञाएं हैं। परन्तु यदि कोई न जाने, तो न जाने। इसलिए हे भाइयो, भविष्यद्वाणी करने की
४० धुन में रहो और न सीखी हुई भाषा बोलने से मना न करो। परंतु सारी बातें सभ्यता के साथ और क्रमानुसार की जाएं।

१४:३० - पद ६,२६।

१४:३१ - यहां ध्यान दें कि प्रत्येक स्थान पर पौलुस कहता है कि सब कुछ दूसरों की भलाई के लिये किया जाए।

१४:३२,३३ - आत्मिक वरदानों के उपयोग का अर्थ अपने आपे से बाहर हो जाना नहीं है। इसमें उनका उपयोग करने वालों की इच्छा और बुद्धि को ताक पर नहीं रख दिया जाता था। जिनके पास भविष्यद्वाणी और अन्यभाषा का वरदान था (और कोई वरदान) (पद २८,३०)। वे यदि चाहते तो शांत रह सकते थे। नहीं तो वहां पर बड़ी गड़बड़ी होती जो कि परमेश्वर के स्वभाव के विपरीत है।

१४:३४ - इस अध्याय का विषय है, कलीसिया की सार्वजनिक सभाओं में कुछ वरदानों का उपयोग है, ऐसे वरदान जिसमें बोलना (कहना) है। पौलुस कहता है कि स्त्रियों को ऐसा नहीं करना चाहिये। उनके पास, वरदान हो सकते हैं, किंतु उनका उपयोग किसी दूसरे समयों में किया जाना चाहिये। ११:५,६ और १ तीमु. २:११-१४ के नोट्स देखें। कुछ लोग सोचते हैं कि पौलुस स्त्रियों को सार्वजनिक सभा में प्रार्थना की अनुमति नहीं दे रहा था, किंतु ऐसा नहीं है। वह भविष्यद्वाणी, अन्यभाषा और उसके अर्थ बताए जाने के संबंध में कह रहा है (पद २४-३१)। इन पदों में यूनानी भाषा में जिस शब्द का अनुवाद "बातें करना किया गया है", वही शब्द ५,६,९,२८ में है।

"आधीन" - ११:३,८,९, इफि. ५:२४; १ तीमु. २:११,१२; १ पतरस ३:१,५,६।

१४:३५ - *"अपने पति से पूछें"* - यदि उनके पति मसीह में विश्वासी हैं, वे उनसे पूछ सकती है। यदि नहीं (हालांकि पौलुस यह नहीं सोचता कि ऐसा कहना आवश्यक है) वे कलीसिया में पासबानों और शिक्षकों से पूछ सकती हैं या उन स्त्रियों से जो उनसे अधिक ज्ञान रखती हैं।

"शर्म की बात" - ११:६। यूनानी शब्द 'लज्जा की बात' ' या पवित्रता' के खिलाफ है जो उचित है उसके विपरीत है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुरिन्थुस के मसीही सोचते थे कि दूसरी कलीसियाएं क्या करती है, प्रेरित क्या सिखाते हैं, इन सबसे उन्हें कुछ लेना देना नहीं है।

१४:३७ - कुछ मसीही सोचते थे कि आत्मिक रीति से वे काफी योग्य लोग हैं। यदि ऐसा था तो पौलुस के द्वारा प्रभु ने जो आज्ञा दी थी उसे उन्होंने पहचानना चाहिये था।

१४:३८ - यहां ऐसा लगता है कि यदि ऐसा कोई व्यक्ति प्रभु की आज्ञा को अनदेखी करता है तो वह इस योग्य नहीं कि उसकी कोई सुने।

१४:३९ - *"न सीखी हुई भाषाएं"* - अनजानी भाषाएं।

१४:४० - पद ३२। १२-१४ अध्यायों में, कलीसिया के आरंभिक वर्षों में विश्वासियों के पास होने वाले अनेक आत्मिक वरदानों के विषय में पौलुस लिखता है। क्या ये वरदानों का अब अस्तित्व नहीं है? निश्चित रीति से आरंभिक प्रेरितों के समान अभी प्रेरित नहीं है, जिन्होंने प्रभु यीशु मसीह को देखा था, सुना था। उनकी शिक्षा त्रुटिहीन थी। यह एक बड़ी गलती होगी, यदि

१५ हे भाइयो, मैं तुम्हें वही शुभ-सन्देश सुनाता हूं जो पहले सुना चुका हूं। इस शुभ-सन्देश को तुमने अंगीकार भी किया था और
२ उसमें तुम स्थिर हो। यदि उस शुभ-सन्देश को जो मैंने तुम्हें सुनाया था, तुम याद रखते हो, तो उसी के द्वारा तुम्हे मुक्ति
३ भी मिलती है, नहीं तो तुम्हारा विश्वास करना व्यर्थ है। इसी कारण मैंने सब से पहले तुम्हें वही बात सुनायी, जो मैंने सुनी
४ थी, कि पवित्र वचन के अनुसार यीशु मसीह हमारे पापों के लिए मर गये, और गाड़े गये; और उसी पवित्र वचन के अनुसार

हम कहे कि जिस प्रकार का अधिकार और त्रुटिहीनता मसीह के प्रेरितों में थी, आज के प्रेरितों में है, तो यह सही नहीं है। बाइबिल प्रथम शताब्दी में लिखी गई और इससे आत्मा से प्रेरित, बिना त्रुटि की वे शिक्षाएं है, जिन्हें परमेश्वर मनुष्यों तक पहुंचाना चाहते थे। सभी के लिये केवल बाइबिल ही आत्मिक अधिकार रखती है। यही एक ऐसी शिक्षा देती है, जो बिना गलती की है। हमें इसकी आवश्यकता है, हमारे पास यह होनी चाहिये और हमारे भीतर इसकी चाह होनी चाहिये।

कुछ और वरदान जिनके बारे में यहां कहा गया है (उदा. सहायता और शिक्षा) समाप्त नहीं हुए हैं। क्या इनमें से कुछ समाप्त हो गए हैं? इस पुस्तक का लेखक नहीं मानता कि ऐसा संकेत हमें कहीं मिलता है कि इस मण्डली के युग में वे समाप्त हो जाएंगे या नहीं।

हम यह समझें कि परमेश्वर के पास वह सब करने की स्वतंत्रता है, जो वह चाहते हैं। यह उनकी इच्छा है कि वह आज किसी को वह वरदान दें, या किसी को न दें (१२:११)।

विश्वासियों के मन में एक और विचार आता है। यदि ये सभी वरदान पहली शताब्दी तक ही सीमित हैं, तो यह अजीब लगता है कि पवित्र आत्मा ने पौलुस को इनके विषय में लिखने के लिये प्रोत्साहन दिया, जो इस युग के अंत तक के लिये कलीसियाओं के लिए निर्देश है।

अध्याय १५

१५:१ - *"शुभसंदेश"* - १:१७; ४:१५; ६:१६,१७; रोमि. १:१,६,१५,१६; १६:२५; २ कुरिं. ४:३,४; गल. १:६-६; इफि. ६:१६; फिलि. १:१७,२७; १ तीमु. १:११; २ तीमु. १:१०।

"अंगीकार भी किया था" - गलतियों १:११,१२।

१५:२ - *"उसी के द्वारा तुम्हे मुक्ति भी मिलती है"* - इसी कारणवश परमेश्वर ने मसीह का शुभसंदेश दिया (मरकुस १:१०,१६; रोमि. १:१६)। इसे विश्वास से ग्रहण करने का अर्थ है, मुक्ति। इसको न मानना अनंत दण्ड है (२ थिस्स. १:८,६)। यह विषय महत्वपूर्ण होने के कारण पौलुस यह चाहता था कि कुरिंथ के विश्वासी इस बात को जानें (अन्य सभी लोग भी) और विश्वास करें।

"यदि" - कुलु. १:२३; इब्रा. ३:६; ६:६; १०:३८। शुभसंदेश के विश्वास में बने रहना सच्चे विश्वास का प्रमाण है। कुलु. १:२३; इब्रा. ३:५,६; १०:३६ देखें। कुरिंथ के कुछ लोग इस बात से इंकार कर रहे थे कि परमेश्वर मरे हुओं को जिलाते हैं (१२)। किंतु मसीह का पुनरुत्थान शुभसंदेश का एक महत्वपूर्ण भाग है। जो लोग इसका इंकार करते थे, उनके विश्वास में खोट थी (पद १४,१७)।

"विश्वास करना व्यर्थ है" - इसका अर्थ हो सकता है, विश्वास के सही आधार को न समझे बिना अज्ञानता के साथ विश्वास करना या उन्होंने क्या विश्वास किया यह बिना जाने विश्वास करना। इसका यह अर्थ भी हो सकता है कि जो विश्वास तो दिखाई देता है, परंतु अंत तक बना नहीं रह पाता, वह व्यर्थ है, ऐसा विश्वास बचा नहीं सकता।

१५:३-८ - शुभसंदेश के साथ चार मुख्य बातें जुड़ी हुई हैं - मसीह यीशु की मृत्यु, उनका दफनाया जाना, उनका मृतकों में से जी उठना और विश्वासियों पर उनका प्रगट होना। मसीह की मृत्यु "हमारे पापों के लिये" थी - मत्ती २६:२८; यूहन्ना १:२६; रोमि. ३:२४,२५; ४:२५; २ कुरिं. ५:२१; गलतियों १:४; इब्रा. १:३; ६:२८; १०:१२; १ पतरस २:२४; ३:१८; प्र. वाक्य १:५। जो इस बात का इंकार करते हैं कि वे मसीह वास्तव में मर गए, वह मनुष्य के पापों के लिये परमेश्वर के किए गए प्रबंध, अर्थात् एक मात्र बलिदान का इंकार करते हैं। पापों से बचने के परमेश्वर के एक मात्र उपाय को भी वह अस्वीकार करते हैं। यीशु

५,६ तीसरे दिन जी भी उठे। वह कैफा को, उसके बाद बारह षिष्यों को दिखाई दिए। फिर पांच सौ से अधिक भाइयों को एक
७ साथ दिखाई दिए, जिनमें से अनेक अब तक जीवित हैं, परंतु कई प्रभु में सो गए हैं। फिर याकूब को दिखाई दिए, उसके
८,९ बाद सब प्रेरितों को दिखाई दिए। और सब के बाद मुझ को भी दिखाई दिए, जो मानो अधूरे दिनों का जन्मा हूं। क्योंकि
मैं प्रेरितों में सब से छोटा हूं, बल्कि प्रेरित कहलाने के लायक भी नहीं, क्योंकि मैंने परमेश्वर की कलीसिया को सताया था।
१० परन्तु मैं जो कुछ भी हूं, परमेश्वर के अनुग्रह से हूं; और उनका अनुग्रह जो मुझ पर हुआ, वह व्यर्थ नहीं हुआ; परन्तु मैंने
उन सबसे बढ़कर परिश्रम भी किया; तौभी यह मेरी ओर से नहीं हुआ, परन्तु परमेश्वर के अनुग्रह से हुआ जो मुझ पर था।
११,१२ इसलिए चाहे मैं हूं, चाहे वे हों, हम यही सन्देश देते हैं। इसी सन्देश पर तुमने विश्वास भी किया। इसलिए जबकि मसीह
का यह प्रचार किया जाता है कि वह मरे हुओं में से जी उठे, तो तुममें से कई क्यों कहते हैं कि मरे हुओं का पुनरुत्थान

का दफनाया जाना भी महत्वपूर्ण था। यह इस बात का अंतिम और आवश्यक प्रमाण था कि वह मर चुके हैं (मत्ती २७:५७-६६; मरकुस १५:४२-४६; यूहन्ना १९:३८-४०)। मसीह का जी उठना (उनकी आत्मा का पुनः उनके मरे हुए शरीर में प्रवेश करके जीवित करना और कब्र से निकलने के लिये योग्य करना) भी बहुत महत्वपूर्ण है (पद १३,१४,१७,१८; रोमि. ४:२५; मत्ती २८:६)।

मसीह की मृत्यु और जी उठना "वचन के अनुसार" था। मत्ती ५:१७; लूका २४:२५-२७,४५,४६ देखें। शिष्यों पर मसीह का प्रगट होना भी महत्व की बात थी। उनके जी उठने के वे प्रमाण थे। पौलुस उनके सभी स्थानों पर प्रगट होने का वर्णन नहीं करता है। जी उठने के बाद मसीह के प्रगट होने के संबंध में मत्ती २८:६ के नोट्स देखें।

१५:६ - *"पांच सौ"* - व्यवस्था कहती है कि दो या तीन व्यक्तियों की गवाही से एक बात प्रमाणित की जाती है (व्यवस्था. १७:६; मत्ती १८:१६)। मसीह के जी उठने के बाद जिन लोगों ने उन्हें देखा था वे ५०० से अधिक थे। उनमे से कुछ ऐसे थे जो दुनिया के सर्वश्रेष्ठ लोगों में से थे। पुराने समयों की घटनाओं से संबंधित जो इतिहासिक प्रमाण हैं उनमें से सबसे अधिक महत्वपूर्ण मसीह की मृत्यु, गाड़े जाने और जी उठने का है।

"सो गए हैं" - जगत छोड़कर चले गए हैं (यूह. ११:११-१४)।

१५:७ - *"याकूब"* - शायद प्रभु का भाई (प्रे. काम १:१३,१४)

१५:८ - *"दिखाई दिए"* - प्रे. काम ९:३-७।

"अधूरे दिनों का जन्मा हूं" - पौलुस का अर्थ यह है कि वह आरंभिक प्रेरितों या शिष्यों में से नहीं था। जब मसीह जी उठे, उस समय वह पाप ही में था। वह केवल बाद ही में आश्चर्यजनक रीति से वह मसीह में आया और प्रेरित बन गया।

१५:९ - प्रे. काम ८:३; ९:१,२; इफि. ३:८; १ तीमु. १:१२-१५। उसने दूसरों को जिन बातों को करने के लिये फिलि. २:३ में कहा था, उन्हें स्वयं भी करने में उसे प्रसन्नता थी।

१५:१० - पौलुस समझ गया कि उसके लिये परमेश्वर का सेवक होना, एक प्रेरित होना मात्र प्रभु की दया थी (इफि. ३:७,८; २ तीमु. १:९; तीतुस ३:३,४)। उसका यह कहना कि मैंने सबसे अधिक कार्य किया, अपनी बढ़ाई करना नहीं था। यह परमेश्वर के उस अनुग्रह की बढ़ाई जो परमेश्वर ने उसके जीवन मे किया था।

१५:११ - जो संदेश दूसरे प्रेरितों ने दिया वही संदेश पौलुस दे रहा था। उद्धार का मार्ग एक ही है। वे सभी इस एक मार्ग को जानते थे और इसका प्रचार करते थे।

१५:१२-१९ - सदूकियों के समान कुछ लोग कुरिंथ की कलीसिया में थे (प्रे. काम २३:८)। वे कह रहे थे कि मृतक शरीरों में फिर से जीवन आना असंभव बात है। पौलुस कहता है यदि ऐसा नहीं है तो इसके दुखद परिणाम है - मसीह जीवित नहीं हुए (पद १३,१६)। प्रेरितों का प्रचार करना 'व्यर्थ और झूठा' (पद १५) हुआ। मसीही लोगों का विश्वास करना भी बेकार होगा (पद १४,१७)। वे भी पाप में पड़े हैं और हमेशा के लिए नाश हो गए हैं (१७,१८)। वे एक दयनीय स्थिति में हैं (पद १९)। इस प्रकार से लोगों के उद्धार के लिये पौलुस मसीह के पुनरूत्थान की आवश्यकता को दिखाता है, यह सुसमाचार का केन्द्र है। इससे इंकार करना सुसमाचार को बदल देना है। यह शुभ संदेश की सच्चाई और सामर्थ को कम करना है।

१३,१४ है ही नहीं? यदि मरे हुओं का पुनरुत्थान ही नहीं, तो मसीह भी नहीं जी उठे। और यदि मसीह नहीं जी उठे, तो हमारा
१५ सन्देश भी व्यर्थ है, और तुम्हारा विश्वास भी व्यर्थ है। बल्कि हम परमेश्वर के झूठे गवाह ठहरे; क्योंकि हमने परमेश्वर के
१६ विषय में यह गवाही दी कि उन्होंने मसीह को जिला दिया। परंतु यदि मरे हुए नहीं जी उठते तो, नहीं जिलाया। और यदि
१७ मरे हुए नहीं जी उठते, तो मसीह भी नहीं जी उठे। और यदि मसीह नहीं जी उठे, तो तुम्हारा विश्वास व्यर्थ है; तुम अब
१८,१९ तक अपने पापों में फंसे हो। वरन् जो मसीह में सो गए हैं, वे भी नाश हुए। यदि हम केवल इसी जीवन में मसीह से आशा
२० रखते हैं, तो हम सब मनुष्यों से अधिक दुखी हैं। परन्तु सचमुच मसीह मरे हुओं में से जी उठे हैं, और जो सो गए हैं,
२१ उनमें वह पहला फल हुए। क्योंकि जब मनुष्य के द्वारा मृत्यु आयी, तो मनुष्य ही के द्वारा मरे हुओं का पुनरुत्थान भी आया।
२२,२३ जैसे आदम में सब मरते हैं, वैसे ही मसीह में सब जिलाए जाएंगे। परन्तु हर एक अपनी अपनी बारी के अनुसार, पहला
२४ फल मसीह; फिर मसीह के आने पर उनके लोग जी उठेंगे। उसके बाद अन्त होगा। उस समय वह सारी प्रधानता और सारा
२५ अधिकार और सामर्थ का अन्त करके राज्य को परमेश्वर पिता के हाथ में सौंप देंगे। क्योंकि जब तक कि वह अपने षत्रुओं
२६ को अपने पांवों तले न ले आए, तब तक उनका राज्य करना अवश्य है। सब से अन्तिम शत्रु जो नाश किया जाएगा, वह

१५:१४ - *“संदेश”* - का अर्थ है संदेश जिसका उन्होंने प्रचार किया, न कि संदेश देने की क्रिया। यदि मसीह जी न उठे होते, तो हमारे पास कोई संदेश न होता। हमारा विश्वास व्यर्थ और बिना किसी नींव के होता।

१५:१७-१८ - यदि मसीह मृतकों में से जी नहीं उठा, तो वह हमारे अपराधें क नीचे दोषी ठहराए गए। उनका बलिदान परमेश्वर के सम्मुख ग्रहणयोग्य न हुआ। किसी को न क्षमा मिली है, न कोई धर्मी ठहराया जाता है (रोमि. ४:२४,२५)। यदि कोई धर्मी नहीं ठहराया जाता है, किसी को क्षमा नहीं मिलती है, तो सभी खोए हुए हैं।

१५:१९ - मसीही लोगों की आशा इस वर्तमान समय के परे होनी चाहिये। रोमि. ५:२-५; ८:२३-२५ देखें। यदि पुनरूत्थान न होता, तो ऐसी कोई भी आशा व्यर्थ होती। ऐसी स्थिति में मसीही लोग तरस के लायक होते। ऐसे मे उनकी सारी कठिनाईयां, परखा जाना, सताव (यूह. १५:१८-२०; प्रे. काम १४:२२; २ तीमु. ३:१२) आदि का कोई महत्व न होता।

१५:२० - किंतु मसीह के शिष्यों की हालत दयनीय नहीं है। क्यों? मसीह का जी उठना एक सत्य है। इसके बारे में कोई संदेह नहीं।

“पहिला फल” - भविष्य के बहुत से लोगों के जी उठने वालों में से वह प्रथम था।

१५:२१,२२ - रोमि. ५:१२-२१; से तुलना करें। पुनरूत्थान विषय में यूह. ५:२८,२९ आदि देखें।

१५:२३ - *“उनके लोग”* - यूहन्ना ६:३७-४०; १७:६,१०। यहां पौलुस प्रभु यीशु मसीह के लौटने के समय अविश्वासियों के जी उठने के बारे में कुछ नहीं कहता है। वह यह नहीं सिखाता है कि एक ही समय में सभी लोग जिलाए जाएंगे। तुलना करें प्र. वाक्य २०:५।

१५:२४ - *“उसके बाद”* - यूनानी शब्द का अनुवाद ‘तुरंत’ होना ज़रूरी नहीं है। यह इसका अर्थ हो सकता है (इस लेखक के विचार से) बाद में किसी समय। निश्चित समय को नहीं बताया गया है।

“अंत” - पद २५ का अर्थ होगा, मसीह के शासन का अंत। कुछ लोगों का कहना है कि वर्तमान समय जबकि मसीह शासन करतो हैं। हमारे विचार से यह प्रभु यीशु के इस पृथ्वी पर १००० वर्ष के शासन की ओर संकेत है (देखें प्र. वा. २०:१-६)। यह सच है कि अब तक मसीह ने सारी प्रधानताएं, अधिकार और सामर्थ का अंत नहीं कर डाला है। अपने दूसरे आगमन तक वह ऐसा करेंगे भी नहीं। प्र. वा. १९:११-१६ देखें। अभी इस युग के अंत तक मानवीय राज्य, अधिकार और सामर्थ जारी रहेंगे। अपने आने पर और १००० वर्ष के राज्य में मसीह उन्हें नाश करेंगे। उसके पश्चात् उस राज्य को पिता याहवे के हाथ में सुपुर्द कर देंगे।

१५:२५ - *“शत्रुओं को”* - सारे मानवीय शत्रु, शैतान और सभी दुष्टात्माएं और मृत्यु। वे सारी बातें जो उसके लोगों को दुख पहुंचाती हैं, परमेश्वरीय शासन का विरोध करती हैं या उनके शासन के विरोध में है।

१५:२६ - *“अंतिम शत्रु”* - मृत्यु - २ तीमु. १:१०; प्र. वा. २०:१४; लूका २०:३४।

२७ मृत्यु है। क्योंकि परमेश्वर ने सब कुछ मसीह के पांवों तले कर दिया है। परन्तु जब वह कहते हैं कि सब कुछ उनके
२८ आधीन कर दिया गया है तो प्रत्यक्ष है, कि जिस परमेश्वर ने सब कुछ उनके आधीन कर दिया, वह स्वयं अलग रहे। और जब
सब कुछ उनके आधीन हो जाएगा, तो पुत्र स्वयं भी उनके आधीन हो जाएगा जिन्होंने सब कुछ उनके आधीन कर दिया;
२९ ताकि सब में परमेश्वर ही सब कुछ हो। नहीं तो जो लोग मरे हुओं के लिए बपतिस्मा लेते हैं, वे क्या करेंगे? यदि मरे हुए
३०,३१ जी उठते ही नहीं, तो फिर क्यों उनके लिए बपतिस्मा लेते हैं? फिर हम भी क्यों हर पल खतरा मोल लें? हे भाइयो, मुझे
३२ उस घमण्ड के अनुसार जो हमारे मसीह यीशु में मैं तुम्हारे विषय में करता हूं, कि मैं प्रतिदिन मरता हूं। यदि मैं मनुष्य की रीति
पर इफिसुस में वन-पशुओं से लड़ा, तो मुझे क्या लाभ हुआ? यदि मरे हुए जिलाए नहीं जाएंगे, तो आओ, खाए-पिएं, क्योंकि
३३,३४ कल तो मर ही जाएंगे। धोखा न खाना, बुरी संगति अच्छे चरित्र को बिगाड़ देती है। विश्वास के लिए जाग उठो और पाप
३५ न करो; क्योंकि कई ऐसे हैं जो परमेश्वर को नहीं जानते। मैं तुम्हें लज्जित करने के लिए यह कहता हूं। अब कोई यह कहेगा
३६ कि मरे हुए किस तरह जी उठते हैं, और कैसी देह के साथ आते हैं? हे निर्बुद्धि, जो कुछ तुम बोते हो, जब तक वह न
३७ मरे, जिलाया नहीं जाता। और जो तू बोता है, यह वह देह नहीं जो उत्पन्न होनेवाली है, परन्तु मात्र दाना है, चाहे गेहूं का,

---

१५:२७ - भजन ८:६; इब्रा. २:८,९।

१५:२८ - मत्ती ३:७; यूह. ३:१६; और ५:१८-२३ में पुत्र पर नोट्स देखें।
"आधीन" - यूह. १४:२८ से तुलना करें। यूह. ५:१६-२३ के नोट्स देखें।
"सब में ... सब कुछ" - रोमि. ११:३६।

१५:२९ - *"मरे हुओं के लिये बपतिस्मा"* - किसी को नहीं मालूम इसका अर्थ क्या है और लोग इसे क्यों करते थे। बाइबिल मे कहीं और इसके विषय में कुछ नहीं है। पौलुस यह नहीं कहता कि उसने स्वयं किया या कुरिंथ के विश्वासियों ने। न ही वह यह कहता है कि वह इसके पक्ष में है।

१५:३०-३२ - पद १९। यदि मृत्यु के पश्चात् अच्छे भविष्य की आशा नहीं है तो इस धरती पर जितना आनंद उठाया जा सकता है, उठाया जाना चाहिये। इसलिये कि पौलुस फिर से जिलाए जाने पर विश्वास करता था, वह प्रतिदिन खतरों और मृत्यु का साम्हना करने के लिये तैयार रहता था। उनमें से कुछ खतरों के विषय में हम २ कुरिं. ११:२३-२७ में पढ़ते हैं। 'मैं प्रतिदिन मरता हूं' इस वाक्य का अर्थ शायद यह है कि वह प्रतिदिन सताव और खतरों का साम्हना कर रहा था, जो मृत्यु का कारण बन सकते थे।

१५:३२ - *"वन पशुओं"* - इसका अर्थ यथार्थ और सांकेतिक दोनों ही हो सकते हैं। ऐसा सच में हुआ, इसका कोई ब्यौरा तो नहीं है, किंतु इफिसुस में उसने दूसरे खतरों का साम्हना किया था। २ कुरिं. १:८ देखें। शायद उसका इशारा उन सताने वाले लोगों की ओर था जो पशुओं के समान थे (भजन २२:१२,१३; लूका १३:३२; प्रे. काम २०:२९ से तुलना करें)।

१५:३३ - गलत लोगों से मित्रता करना विश्वासियों के साम्हने खतरा बन सकता है। यहां पर गलत से उन लोगों की ओर संकेत है जो जी उठने पर विश्वास नहीं करते हैं। परंतु क्या यह कहना आवश्यक है कि दूसरे प्रकार के मित्र भी 'बुरी संगति' कहला सकते हैं?

१५:३४ - गलत शिक्षा गलत रहने के तरीके और पाप की ओर ले जा सकती है। पुनरूत्थान का इंकार करने से कुरिंथ कें मसीहियों में यह परिणाम हुआ।

१५:३५-४९ - यहां पौलुस उन प्रश्नों का उत्तर देता है जिन्हें कुछ मसीही पूछ रहे थे। ऐसा प्रतीत होता है कि वे अविश्वास में पूछ रहे थे और शायद जी उठाए जाने का ठट्ठा कर रहे थे। क्योंकि जो लोग प्रश्न पूछते थे, उनको वह मूर्ख कहता है (पद ३६)। वह कहता है कि मनुष्य का शरीर (यहां वह विश्वासियों की देह के विषय कहता है) एक बीज के समान है। इसकी मृत्यु के पश्चात् यह जो कुछ है उससे भिन्न लगेगा। भिन्न-भिन्न प्रकार की देह है और उनकी महिमा भी भिन्न है। परमेश्वर मौलिक तत्वों को लेकर जैसा चाहे बना सकते हैं। ऐसा वह विश्वासियों के शरीरों के साथ कर सकते हैं और करेंगे भी।

३८ चाहे किसी और अनाज का। परन्तु परमेश्वर अपनी इच्छा के अनुसार उसको देह देता है; और हर एक बीज को उसकी
३९ विशेष देह दी जाती है। सब शरीर एक समान नहीं, परन्तु मनुष्यों का शरीर और है, पशुओं का शरीर और है; पक्षियों
४० का शरीर और है; मछलियों का शरीर और है। स्वर्गिक देह हैं, और पार्थिव देह भी हैं। परन्तु स्वगिक देहों का तेज अलग
४१ है, और पार्थिव का अलग। सूर्य का तेज अलग है, चान्द का तेज अलग है, वैसे ही तारागणों का तेज अलग है, (क्योंकि
४२ एक तारे से दूसरे तारे के तेज़ में अन्तर है)। मरे हुओं का जी उठना भी ऐसा ही है। शरीर नाशमान दशा में बोया जाता
४३ है, और अविनाशी रूप में जी उठता है। वह अनादर के साथ बोया जाता है, और तेज के साथ जी उठता है। निर्बलता
४४ के साथ बोया जाता है, और सामर्थ के साथ जी उठता है। स्वाभाविक देह बोयी जाती है, और आत्मिक देह जी उठती
४५ है। स्वाभाविक देह है, तो आत्मिक देह भी है। ऐसा ही लिखा भी है कि प्रथम मनुष्य, अर्थात् आदम, जीवित प्राणी बना
४६ और अन्तिम आदम, जीवनदायक आत्मा बना। परन्तु पहले आत्मिक न था, पर स्वाभाविक था, इसके बाद आत्मिक हुआ।
४७,४८ प्रथम मनुष्य धरती से अर्थात् मिट्टी का था; दूसरा मनुष्य स्वर्गिक है। जैसा वह मिट्टी का था, वैसे ही दूसरे मिट्टी के हैं;
४९ और जैसे मसीह स्वर्गिक हैं, वैसे ही और भी स्वर्गिक हैं। जिस प्रकार हमने उसका रूप, जो मिट्टी का था धारण किया वैसे
५० ही उस स्वर्गिक का रूप भी धारण करेंगे। हे भाइयो, मैं यह कहता हूं कि मांस और लोहू परमेश्वर के राज्य के अधिकारी
५१ नहीं हो सकते, और न विनाश अविनाशी का अधिकारी हो सकता है। देखो, मैं तुमसे भेद की बात कहता हूं कि हम सब

१५:४२-४४ - जी उठने के बाद विश्वासियों की देह महिमा और सामर्थ से भरी होगी। वह कभी मरेगी नहीं। एक आत्मिक अस्तित्व के लिये वे बिलकुल खरे उतरेंगे। वे मसीह की जी उठी देह के समान होंगे। पद ४९; फिलि. ३:२१; रोमि. ८:२९; १ यूह. ३:२; लूका २४:३१,३६,५१; यूह. २०:१९,२६ देखें।

१५:४५ - उत्पत्ति २:७। 'अंतिम आदम' का अर्थ है मसीह जो सिर हैं, वह एक नए प्रकार के लोगों के प्रतिनिधि हैं और उनका आरंभ करनेवाले हैं। आदम के पास जीवन था। मसीह जीवन देते हैं (यूहन्ना ५:२१-२६; ११:२५,२६; १४:६)। जीवनदायक आत्मा का अर्थ यह नहीं है कि मसीह के पास वास्तविक शरीर नहीं था (इब्रा. २:१४ देखें)। मनुष्य बनने से पहले वह एक आत्मा थे।

१५:४६ - उसके कहने का अर्थ है कि पहला आदम पहले आया।

१५:४७ - उत्प. २:७; ३:१९; लूका २:११; यूह. १:१४; ३:१३; ६:३८,५१; फिलि. २:६,७।

१५:४८ - आदम से लोग जो प्राप्त करते हैं वह ऐसी देह है जो मरती है, मिट्टी में मिल जाती है। जो 'स्वर्गिक' हैं वे मसीह से वह प्राप्त करेंगे जो उससे कही बढ़कर है। मसीह मे विश्वासी 'स्वर्गिक' या स्वर्ग के हैं।

उनका जीवन वहां है (गल. २:६; कुलु. ३:१-३)
उनकी आशा वहां है (इब्रा. ६:१९,२०)
उनका सिर वहां है (इफि. १:२२)
उनकी मीरास वहां है (१ पतरस १:४)
उनका घर कहां है (यूह. १४:२)
उनका नागरिकता वहां की है (फिलि. ३:२०)।

१५:४९ - ४७-४९ में मसीह को तीन बार 'स्वर्गिक' कहा गया है। इसका अर्थ यह नहीं कि वह स्वर्ग में एक मनुष्य थे, परंतु इसके पहले कि वह इस पृथ्वी पर मनुष्य के रूप में आए, वह स्वर्ग में थे।

"वैसे ही" - पद ४२-४४।

१५:५० - विश्वासी अभी परमेश्वर के राज्य में हैं। कुलु १:१३। लेकिन यहां पौलुस इसे विरासत में प्राप्त करने की बात करता है। रोमि. ८:१७-२३; इफि. १:१४; १ पतरस १:४ देखें। इस मृत्यु की देह के साथ उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

१५:५१-५२ - १ थिस्स. ४:१३-१८; यूहन्ना १४:३। सभी विश्वासी नहीं मरेंगे। मसीह के आने पर कुछ जीवित रहेंगे और पलक मारते ही बदल जाएंगे।

५२ तो नहीं सोएंगे, परन्तु सब बदल जाएंगे। यह क्षण भर में, पलक मारते ही अंतिम तुरही फूंकते ही होगा; क्योंकि तुरही फूंकी
५३ जाएगी और मरे हुए अविनाशी दशा में उठाए जाएंगे, और हम बदल जाएंगे। क्योंकि अवश्य है कि यह नाशमान देह अविनाश
५४ को पहन ले, और यह मरनहार देह अमरता को पहन ले। जब यह नाशमान अविनाश को पहन लेगा, और यह मरनहार
५५ अमरता को, तब वह वचन जो लिखा है, पूरा हो जाएगा कि जय ने मृत्यु को निगल लिया। हे मृत्यु, तेरी जय कहां रही?
५६,५७ हे मृत्यु, तेरा डंक कहां रहा? मृत्यु का डंक पाप है; और पाप का बल व्यवस्था है। परन्तु परमेश्वर का धन्यवाद हो, जो
५८ हमारे प्रभु यीशु मसीह के द्वारा हमें विजयी बनाते हैं। इसलिए हे मेरे प्रिय भाइयो, दृढ़ और अटल रहो, और प्रभु के काम
में सर्वदा बढ़ते जाओ, क्योंकि तुम यह जानते हो कि तुम्हारा परिश्रम प्रभु में व्यर्थ नहीं है।

"भेद" - परमेश्वर का ऐसा प्रकाशन जिसे लोग किसी और तरीके से नहीं जान सकते।

"अंतिम तुरही" - मत्ती २४:३०,३१ (मात्र तुरही जिसका वर्णन यीशु ने किया) और प्र. वाक्य ११:१५ (प्रकाशितवाक्य में वर्णित अंतिम तुरही) देखें। मत्ती और प्रकाशितवाक्य में इन पदों में वर्णित घटनाओं के पहले विश्वासी किस प्रकार जी उठेंगे, और फिर भी इसे अंतिम तुरही कहा जाएगा, यह देखना कठिन है। संतों के उठाए जाने का सिद्धांत जो पौलुस सिखाता है, उसे गंभीरता से लिया जाना चाहिये (१ थिस्स. ४:१६,१७)। यही एक स्थान है जहां वह इसके होने के विषय बताता है। यूनानी शब्द जो तुरही को दिखाते हैं (संज्ञा और क्रिया) नए नियम में २३ बार उपयोग में आए हैं - १ कुरिं. १४:८; यहां दो बार। १५:५२; मत्ती ६:२; २४:३१; १ थिस्स. ४:१६; इब्रा. १२:१६; प्र. वा. १:१०; ४:१; ८:२; दो बार ८:६; ८:७,८,१०,१२ में, दो बार ८:१३, ९:१,१३,१४; १०:७; ११:१५।

१५:५३ - पद ४२-४४-४६।

१५:५४ - यशा. २५:८।

१५:५५ - होशे १३:१४।

१५:५६ - मृत्यु के पास अपना कोई डंक नहीं है। इसका डंक पाप है (रोमि. ५:१२; ६:२३)। पाप में मरना सदा के लिये खोए रहना है। उनके पापों को हटाने के द्वारा विश्वासियों के लिये मसीह ने यह डंक निकाल दिया है इसलिये उनके लिये मृत्यु मसीह के साथ के जीवन के लिये एक द्वार है। फिलि १:२१-२३।

"व्यवस्था" - इसका अर्थ है मूसा द्वारा दी गई परमेश्वर की व्यवस्था। व्यवस्था हम सभी को दोषी ठहराती है (रोमि ३:१६,२०)। पाप को संभव बनाती है, रोमि. ४:१५। हमारे पापमय स्वभाव को बलवा करने के लिये प्रेरित करती है और अधिक पाप करवाती है (रोमि. ७:५-११)।

१५:५७ - *"विजयी"* - पाप और मृत्यु और वह प्रत्येक ऐसी बात जो हमारी अनंत हानि कर सकती है, उस पर वहे विजय देते हैं (रोमि. ८:३७; २ कुरिं. २:१४; १ यूह. ५:४)। मृत्यु और पाप की जीत विश्वासियों के ऊपर नहीं है। ऐसा इसलिये है क्योंकि मसीह ने पाप और मृत्यु पर विजय पा ली है। वह उनके साथ उस विजय के भागीदार हैं। मरे हुओं से का जी उठना इन सब का प्रमाण है।

१५:५८ - *"इसलिए"* - पौलुस ने इन बड़े सिद्धांतों और परमेश्वर के प्रकाशनों को सिखाया। वह सदा यह चाहता था कि वे अपने जीवन में इन सच्चाईयों को लागू करे और भले बन जाएं रोमि. १२:१; २ कुरिं. ७:१; गल. ५:१; इफि. ४:१; कुलु. ३:५।

"दृढ़ और अटल" - पद १; १६:१३; रोमि. ५:२; २ कुरिं. १:२४; गल. ५:१; इफि. ६:११,१३,१४; भजन १५:५; १६:८।

"प्रभु के काम में सर्वदा बढ़ते जाओ" - पद १०; मत्ती २१:२८; २४:४५,४६; लूका १६:११,२४; यूह. ४:३४-३६; २ कुरिं. ६:८; कुलु. १:१०; इब्रा. ६:१०; १३:२१; प्रका. २२:१२; सभोपदेशक ६:१०। इसलिये कि मृतक जी उठेंगे, हमारा परिश्रम बेकार नहीं है। तब प्रत्येक व्यक्ति अपने परिश्रम का प्रतिफल पाएगा। ध्यान दें कि कौन सा कार्य व्यर्थ नहीं है - 'प्रभु का कार्य' और प्रभु में कार्य'। हमें प्रभु का काम उनकी सामर्थ में, उनके निर्देश में करना चाहिये।

१६ अब उस भेंट के विषय में जो पवित्र लोगों के लिए इकट्ठी की जाती है, जैसी आज्ञा मैंने गलतिया की कलीसियाओं को
२ दी, वैसा ही तुम भी करो। सप्ताह के पहले दिन, तुममें से हर एक अपनी आमदनी के अनुसार कुछ अपने पास रख
३ छोड़ा करे, कि मेरे आने पर इकट्ठा न करना पड़े। जब मैं आऊंगा, तो जिन्हें तुम चाहोगे उन्हें मैं चिट्ठियां देकर भेज दूंगा
४,५ कि वे तुम्हारा दान यरूशलेम पहुंचा दें। और यदि मेरा भी जाना हो सका तो वे मेरे साथ जाएंगे। मैं मकिदुनिया से होकर
६ तुम्हारे पास आऊंगा, क्योंकि मुझे मकिदुनिया होकर तो जाना ही है। परन्तु हो सकता है कि मैं तुम्हारे यहां ही ठहर जाऊं
७ और शरद ऋतु तुम्हारे यहां काटूं। उसके बाद मुझे जहां जाना हो, वहां तुम मुझे पहुंचा देना। क्योंकि मैं अब मार्ग में तुमसे
८ भेंट करना नहीं चाहता; परन्तु मुझे आशा है कि यदि प्रभु चाहे तो कुछ समय तक तुम्हारे साथ रहूंगा। परन्तु मैं पिन्तेकुस्त
९,१० तक इफिसुस में रहूंगा। क्योंकि मेरे लिए एक बड़ा और उपयोगी द्वार खुला है, किन्तु विरोधी बहुत से हैं। यदि तीमुथियुस
११ आ जाए, तो देखना कि वह तुम्हारे यहां निडर रहे; क्योंकि वह मेरे समान प्रभु का काम करता है। इसलिए कोई उसे तुच्छ
१२ न जाने, परन्तु उसे कुशल से मेरे पास पहुंचा देना,क्योंकि मैं उसका इन्तज़ार कर रहा हूं कि वह भाइयों के साथ आए। भाई
अपुल्लोस से मैंने बहुत बिनती की है कि तुम्हारे पास भाइयों के साथ आ जाए, परन्तु उसे इस समय जाने की बिल्कुल
१३ इच्छा नहीं है; परन्तु अवसर मिलते ही, वह आ जाएगा। जागते रहो, विश्वास में स्थिर रहो, पुरुषार्थ करो, बलवन्त
१४,१५ हो। जो कुछ करते हो प्रेम से करो। हे भाइयो, तुम स्तिफनुस के घराने को जानते हो कि वे अखया के पहले फल हैं,

---

अध्याय १६

१६:१-४ - रोमि. १५:२६; २ कुरिं. अध्याय ८ और ९; प्रे.काम २४:१७। यह स्पष्ट है कि यरूशलेम में रहने वाले लोग गरीब और ज़रूरतमंद भी थे। इस कारण पौलुस ने उनकी आर्थिक सहायता करने के लिए अन्य कलीसियों से मदद प्राप्त की।

१६:२ - *"पहले दिन"* - रविवार के दिन। प्रे.काम २०:७; प्र. वाक्य १:१० देखें। ऐसा लगता है कि मसीह के जी उठने के तुरंत बाद विश्वासी यहूदियों के सब्त के दिन अर्थात् शनिवार के स्थान पर रविवार को आराधना के लिये मिलने लगे।

१६:४ - पौलुस इस धन के विषय में बहुत सावधान था। वह नहीं चाहता था कि इसका दुरूपयोग हो या इसके गलत इस्तेमाल के विषय में किसी को संदेह हो - २ कुरिं. ८:२०,२१।

१६:५ - *"मकिदुनिया"* - प्रे.काम १९:२१; २०:१२।

१६:६ - *"तुम मुझे पहुंचा दो"* - रोमि. १५:२४ से तुलना करें।

१६:९ - *"द्वार"* - प्रे.काम १४:२७; २ कुरिं. २:१२; कुलु. ४:३; प्रका. ३:७,८। प्रभु जब सेवा का द्वार खोलते हैं, तो चाहते हैं कि हम प्रवेश करें। किंतु शुभसंदेश के विरोधी प्रयास करेंगे कि हम उसमें प्रवेश न करें।

१६:१०,११ - *"तीमुथियुस"* - प्रे.काम १६:१; १ तीमु. २; २ तीमु. २:२।

"निडर" - १ तीमु. ४:१२। तीमुथियुस नवजवान था और शायद डरपोक स्वभाव का भी। कुरिंथ के विश्वासी - उसकी इतनी सहायता नहीं करते थे, जितनी उन्हें करनी चाहिये थी - ४:१,८-१३।

१६:१२ - *"अपुल्लोस"* - १:१२; ३:४-६; प्रे.काम १८:२४-२८।

१६:१३ - *"जागते रहो"* - प्रे.काम २०:२८; रोमि. १६:१७; कुलु. ४:२; १ थिस्स. ५:६; २ तीमु. ४:५।

"स्थिर" - १५:५८।

"बलवन्त" - इफि. ६:१०; २ तीमु. २:३; यशा. ४०:३१।

१६:१४ - *"प्रेम"* - १०:२४; १३:१-१३; यूह. १३:३४।

१६:१५ - कुरिंथ अखाया प्रांत में था।

"पवित्र लोगों की सेवा के लिये तैयार" - एक आत्मिक वरदान था जिसे वे लोग निरंतर और पूरे हृदय से इस्तेमाल

१६ और पवित्र लोगों की सेवा के लिए सदा तैयार रहते हैं। इसलिए मैं तुमसे बिनती करता हूं कि ऐसे लोगों की आज्ञा में रहो,
१७ बल्कि हर एक की जो इस काम में परिश्रमी और सहकर्मी हैं। मैं स्तिफनुस और फूरतूनातुस और अखइकुस के आने से
१८ आनन्दित हूं, क्योंकि उन्होंने तुम्हारी घटी पूरी की है। उन्होंने मेरी और तुम्हारी आत्मा को चैन दिया है, इसलिए ऐसों का
१९ आदर करो। आसिया की कलीसियाओं की ओर से तुमको नमस्कार; अक्विला और प्रिस्किला का और उनके घर की कलीसिया
२० का भी तुमको प्रभु में बहुत बहुत नमस्कार। सब भाइयों की ओर से तुमको नमस्कार! पवित्र चुम्बन से आपस में नमस्कार
२१,२२ करो। मुझ पौलुस का अपने हाथ का लिखा हुआ नमस्कार! यदि कोई प्रभु से प्रेम न रखे तो वह श्रापित हो। हमारे प्रभु
२३,२४ आनेवाले हैं। प्रभु यीशु मसीह का अनुग्रह तुम पर होता रहे। मेरा प्रेम मसीह यीशु में तुम सब से रहे। आमीन।।

कर रहे थे (१२:२८)। इससे दूसरे लोगों की सहायता हो रही थी। ऐसे लोग दूसरे अन्य लोगों के लिये नमूना हैं, जिनके पास दिखने वाले वरदान नहीं होते हैं।

१६:१६ - इसका अर्थ है विश्वासियों की सेवा करने और उनको सहयोग देने के कार्य में उनके नेतृत्व को स्वीकार करना और उनकी सहायता करना।

१६:१७ - *"तुम्हारी घटी पूरी की है"* - वह यह नहीं कह रहा है कि उन्होंने उसकी आर्थिक रीति से सहायता नहीं की थी (९:१२-१८ देखें)। उसका अर्थ यह है कि उसे उनकी अनुपस्थिति खल रही थी। वह उनकी संगति और उनका समाचार जानने के लिए तरस रहा था।

१६:१८ - ऐसा व्यक्ति बनना अच्छा है जो दूसरे लोगों के मनों को हरा भरा कर सके।

१६:१९ - एशिया के एक मशहूर शहर इफिसुस से पौलुस लिख रहा था।

"अक्विला प्रिसिल्ला" - प्रे.काम १८:१,३,२६; रोमि. १६:३,४।

"उनके घर की" - रोमि. १६:५।

१६:२० - *"चुम्बन"* - रोमि. १६:१६।

१६:२१ - प्रायः पौलुस मुंह से कहता जाता था, किंतु कोई और उसे लिखा करता था (रोमि. १६:२२)। परंतु अपने हाथों से वह अभिवादन जोड़ दिया करता था (२ थिस्स. ३:१७)।

१६:२२ - हमारे आत्मिक जीवन का प्रमाण है प्रभु यीशु के प्रति हमारा प्रेम (१ यूहन्ना ३:१४; ४:७,८,१६)। प्रभु के लिए प्रेम का अभाव आत्मिक मृत्यु का प्रमाण है। यदि हम मसीह से प्रेम नहीं कर सकते या नहीं करते, तो हम दिखाते हैं कि हम भ्रष्ट हैं। हम अपने पापों में फंसे हैं और परमेश्वर के श्राप के लायक हैं। प्रभु यीशु मसीह के सम्बंध में हमारे हृदयों की स्थिति सबसे अधिक मायने रखती है।

"हे प्रभु यीशु आइए" - प्र. वा. २२:२०; अरामी भाषा में यह 'मारानाथा' है।

१६:२३ - १:३ देखें। रोमि. १:७; १६:२०।

१६:२४ - कुरिंथ में पौलुस के विरोधी थे। कुछ मन के अनुसार चलने वाले, घमंडी, झगड़े लगाने वाले थे। कुछ आत्मिक वरदानों का दुरूपयोग करनेवाले थे। कुछ उसकी निंदा करनेवाले। उनमें सुधार लाने के लिए पौलुस को कुछ कठोर शब्दों का उपयोग करना पड़ा। किंतु वह सभी को अपना प्रेम भेजता है। १३:४-७ में पौलुस ने जो लिखा है, उससे तुलना करें - जो कुछ पौलुस दूसरों को सिखाता था, उसे करने के लिये वह प्रसन्न था।